वैज्ञानिक-चिन्तन और आधुनिक हिन्दी काव्य

का भावबोध

लेखक

डा० वीरेन्द्र सिंह,

एम० ए०; डी० फिल०

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

आत्माराम एण्ड सन्स

प्रकाशक :
राजेन्द्र प्रकाशन
जयपुर

वितरक : आत्माराम एण्ड सन्ज,
काश्मीरी गेट, दिल्ली

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
हौज खास, नई दिल्ली
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़
17–अशोक मार्ग, लखनऊ

प्रथम संस्करण 1968
मूल्य : चार रु.

मुद्रक :
चन्द्रोदय प्रेस, जयपुर।

बड़ी भाभी और दादा को जिनके
स्नेह ने माता पिता की कमी को
पूरा किया—उन्हीं की सेवा
में मेरा यह हृदय-पुष्प
अर्पित है

भूमिका

लगभग सात वर्ष पूर्व की घटना है। इस घटना का सम्बन्ध इस पुस्तक से इसलिये है कि इस 'घटना' ने मुझे एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख किया। यह घटना है एक पुस्तक से सम्बन्धित। प्रो० ए० एन० हाइटहेड की पुस्तक "साइन्स एंड दि माडर्न वर्ल्ड" में "रोमांटिक प्रतिक्रिया" नामक अध्याय पढ़ने से मुझे लगा कि वैज्ञानिक विचारों का महत्त्व, रचना-प्रक्रिया के क्षेत्र में भी उतना ही मान्य है जितना धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक और सामाजिक विचारों तथा प्रस्थापनाओं का। इसी भावना ने, मुझे कालान्तर में, इस दिशा की ओर प्रेरित किया और हिन्दी की आधुनिक काव्य की रचना-प्रक्रिया में मैंने वैज्ञानिक विचारों तथा प्रस्थापनाओं के स्वरूप तथा क्षेत्र की सीमा को मूल्यांकित करने का प्रयत्न किया। अपनी इस दृष्टि की पूरी पृष्ठभूमि मैंने प्रथम प्रकरण में (आधार तथा मान्यताएं) प्रस्तुत की है।

मैं समझता हूँ कि हिन्दी में यह मेरा थोड़ा सा प्रयत्न एक नई दिशा की ओर अवश्य संकेत करेगा, क्योंकि जहाँ तक मुझे मालूम है कि इस दिशा की ओर हिन्दी में सर्वथा नहीं के बराबर विचार किया गया है। हो सकता है कि अनेक पाठकों को मेरे इस दुस्साहस पर अनेक भ्रांतियां एवं कष्ट-कल्पनाओं का दर्शन हो, पर मेरा विचार है कि वैज्ञानिक-युग में रहकर, कम से कम, इस बौद्धिक हठधर्मिता को त्यागना पड़ेगा। हमारा यह सामान्य सा विचार हो गया है कि वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं तथा विचारों को काव्य की भावभूमि में लाया गया तो काव्य की 'आत्मा' का हनन हो जाएगा। इस मत का प्रत्याख्यान यहाँ करना व्यर्थ है क्योंकि इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में तथा समग्रत: इस ग्रन्थ में, इस मत का खंडन स्वयमेव हो जाता है।

एक बात यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है। मैंने हिन्दी काव्य के आधुनिक-युग को ही अपनी पुस्तक का विषय बनाया है। भारतेन्दु तथा द्विवेदी कालीन काव्य में मुझे वैज्ञानिक विचारों का वह रूप नहीं प्राप्त हुआ

जो मेरी विवेचना के प्रतिमानों को पूरा कर सकता । यही कारण है कि द्विवेदी काल के अंतिम चरण से मुझे अपने विवेचन की सामग्री मिलनी प्राप्त हुई और मैंने १९२५ से लेकर १९६२ तक की काव्यात्मक—चेतना को हृदयंगम कर, अपने विषय के अनुकूल सामग्री एकत्र करना आरम्भ किया। यही कारण है कि १९३२ के बाद की काव्य रचनाएं मेरे विवेचन के अन्तर्गत नहीं आईं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि १९६२ के बाद वैज्ञानिक चिंतन का रूप नहीं मिलता है, पर मेरा विश्वास है कि इस अवधि के बाद उसका और भी स्वस्थ रूप प्राप्त होता है, पर नई कविता के प्रारम्भिक काल तक ही मैंने अपनी पुस्तक की परिधि को केन्द्रित कर दिया है।

प्रत्येक वस्तु की अपनी सीमा होती है और उस सीमा की अपनी सापेक्षता होती है। मेरी भी अपनी सीमायें हैं और मैं यह दावा नहीं कर सकता हूँ कि मेरे प्रयत्न में कोई कमी नहीं है, पर मैं तो यह मान कर चलता हूँ कि कमी ही मनुष्य को सही रास्ते की ओर ले जाती हैं। यदि पाठकों की ओर से मुझे मेरी त्रुटियों का थोड़ा सा भी संकेत मिल सका तो मैं अपने को धन्य मानूँगा।

दिनांक
६ फरवरी, १९६८
जयपुर।

—वीरेन्द्र सिंह

विषय-सूची

१ | आधार तथा मान्यताएं

प्रवेश—आज के वैज्ञानिक युग में किसी भी मानवीय ज्ञान का निरपेक्ष महत्व सम्भव नहीं है। उनका सापेक्षिक महत्व ही आज के विज्ञान की आधारभूत मान्यता है। यह सत्य केवल ज्ञान के लिये ही नहीं, पर समस्त प्राकृतिक-घटनाओं (Phenomenon) तथा विश्व-रचना तथा संतुलन के लिए एक "सत्य" है। इस दृष्टि से भी विज्ञान और साहित्य का सापेक्ष-महत्व है।

हमारे सामने यह समस्या है कि हम साहित्यिक भाव धारा में वैज्ञानिक चिंता-धारा (चिंतन) को किस रूप में ग्रहण कर सकते हैं ? इस पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि वैज्ञानिक चिंता-धारा से मेरा तात्पर्य क्या है ? चिंता-धारा से मेरा मतलब वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति अथवा उसका भौतिक प्रगति में क्या स्थान रहा है, इसका विश्लेषण करना नहीं हैं और न इसका तात्पर्य है कि केवलमात्र वैज्ञानिक सिद्धान्तों को उसी रूप में काव्य में देखने तथा ढूढने का दुस्साहस ! इस शब्द से मेरा प्रयोजन किसी वैज्ञानिक प्रस्थापना तथा सिद्धान्त को नितांत उसी रूप में व्यक्त करने मे नहीं है, पर इससे मेरा अर्थ सिर्फ यह है कि हम वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं को काव्य में इस प्रकार का रूप दें जो अपनी जटिलता को काव्य की रसात्मक अर्थवत्ता या 'तरत्नता' में रूपांतरित कर सके। दूसरी ओर इन प्रस्थापनाओं तथा सिद्धान्तों के आधार पर वह मानव-जीवन, जगत तथा ब्रह्मांड के प्रति नव चिंतन को गतिशील कर सके। इस चिंतन में भौतिक प्रगति तथा तकनीक का प्रसंगवश सहारा लिया जा सकता है, जो मानवीय विचारों तथा तत्व-चिंतन में सहायक हों। इस कार्य में कवि की अनुभूति तथा विज्ञान की तर्क-शक्ति एक नवीन मर्यादा को जन्म दे सकती है।

यहां पर यह प्रश्न उठ सकता है कि वैज्ञानिक चिंता-धार को काव्य

में लाया ही नहीं जा सकता है क्योंकि दोनों की प्रकृति तथा विधाओं मे अन्तर है। यहां 'अंतर' का जो प्रश्न है, उसे ही समन्वय का आधार बनाना है क्योंकि "अंतर" को ही समतल भूमि पर लाना है जो विचारों का एक आवश्यक धर्म है। यही दर्शन का क्षेत्र है। दूसरा तथ्य यह है कि जिस प्रकार एक कवि किसी धार्मिक-दार्शनिक सिद्धान्त तथा प्रस्थापना को काव्य की भावभूमि में प्रस्तुत करता है, क्या उसी प्रकार वह वैज्ञानिक चिंता-धारा को काव्यात्मक परिणति नहीं दे सकता है ? इसके लिए आवश्यक है कि वह विज्ञान की गहराई को, उसकी अन्तर्प्रेरणा को हृदयंगम कर, उसे काव्यात्मक रूप प्रदान करे तभी उसे कुछ मूल्यवान् वस्तु प्राप्त हो सकेगी जो आधुनिक भावबोध को समक्ष रख सकेगी। यह मूल्यवान् जगत, अज्ञेय के अनुसार सकुचा रहता है जो बिना 'डूबे' शायद अनुभूति के क्षेत्र में न आ सके—

सभी जगत
जो मूल्यवान् है सकुचा रहता है
अदृश्य, सीपी के मोती सा
जो मिलता नहीं बिना सागर में डूबे।[1]

आधुनिक भावबोध का प्रश्न—ऊपर आधुनिक भावबोध का प्रश्न उठाया गया है क्योंकि मेरे सारे विवेचन का आधार इसी भावबोध पर मूलतः आश्रित है। वैज्ञानिक चिंतन का बहुत कुछ प्रभाव आधुनिक भावबोध के निर्माण तथा विकास पर पड़ा है। यहां पर 'आधुनिकता' से मेरा तात्पर्य प्राचीन परम्पराओं से सर्वथा विच्छेद नहीं है, पर उसका अर्थ केवल परम्पराओं का पालन भी नहीं है। आधुनिकता का स्वरूप आधुनिक चिंतन का प्रतिरूप होता है जिसमें नव-मूल्यों का समुचित समावेश होता है। वैज्ञानिक युग की आधुनिकता का मापदण्ड यही तथ्य है।

आधुनिक भाव बोध की बात अनेक रूपों में विचारकों के द्वारा उठाई गई है।[2] स्टीफन स्पेन्डर ने आधुनिकता पर जो कुछ भी कहा है, उनमें से तीन तत्व विशेष महत्व रखते हैं जो वैज्ञानिक दृष्टिकोणके परिचायक हैं :

१—अरी ओ करुणा प्रभामयी, अज्ञेय, पृ० २६

२—नई कविता, अंक ७, १९६३–१९६४ देखें।

उनका कहना है कि पूर्ण आधुनिक होने के लिए प्राचीन मूल्यों का पूरा ह्रास होना, समसामयिक घटनाओं में पूर्ण अवगाहन, और फिर, इनमे से कला और साहित्य का सृजन।[१] प्राचीन मूल्यों के प्रति मैं पहले ही संकेत कर चुका हूं, परन्तु फिर भी, ये तीनों तत्व "आधुनिक भावबोध" के लिए परमावश्यक है। समसामयिकता के प्रति पूर्ण जागरूक होना, प्रत्येक समस्या को बौद्धिक परिवेश मे देखना और घटनाओं को निरपेक्ष रूप में न देखकर, उन्हें सापेक्ष रूप में देखना—ये सभी तत्व आधुनिक-भावबोध के रूप-निर्माण के सहायक तत्व माने जा सकते है। मूलतः वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के लिए सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा 'विश्लेषण' की भावना है। वैज्ञानिक चितन में 'विश्लेषण' (Analysis) वह "पूर्ण" (Whole) तत्व है जो "अंशों" मे (Parts) विभाजित हो सके। इसी तथ्य का स्पष्टीकरण करते हुए एडिंगटन ने एक स्थान पर कहा है—"संसार के समस्त रूप-प्रकार जो दृष्टिगत हैं, उनका अस्तित्व विभिन्न अंशों के आपसी सम्बन्धों पर आधारित है।"[२] दूसरे शब्दों में, आधुनिक भावबोध में अंश का, क्षण का और प्रत्येक घटना का महत्व इसी दृष्टि में है, कि वह कहां तक 'पूर्णता' की व्यंजक हो सकी है। इस आणविक युग में एक सेकण्ड का सौवां हिस्सा मूलतः अनतता (Infinity) का द्योतक हैं। आधुनिक हिन्दी कविता ही नहीं, पर विश्व के सभी प्रगतिशील साहित्यों में क्षण का, घटना का और अंश का महत्व इसी दृष्टि से बढता जा रहा है। वैज्ञानिक चितन से उद्भासित यह आधुनिक भावबोध की प्रक्रिया एक प्रकार से, आज की रचना-प्रक्रिया का एक विशिष्ट अंग है। क्षण का महत्व, इस पंक्ति में कितना सजग हो गया है जो समस्त विवेचन का केन्द्रीभूत रूप माना जा सकता है—

क्षणिक के आवर्त में
उलझे महान विशाल।[१]

१—हाईलाइट्स आफ माडर्न लिटरेचर से,

२—द फिलासिफी आफ फिजिकल साइन्स, सर आ० एडिंगटन, पृ० १२२
"All the varities in the world, that all is observable, come from the variety of relations between entities."

१—वेग से गूंज धरा   चतुर्वेदी पृ० ४५

सौंदर्य-बोध—आधुनिकता के इस भावबोध के साथ सौंदर्य-बोध का प्रश्न भी विशेष महत्व रखता है। काव्य में सौंदर्य-बोध का महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। दूसरी ओर, यह भी प्रश्न उठ सकता है कि वैज्ञानिक-प्रस्थापनाओं में सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं प्राप्त होती है। और जब इन प्रस्थापनाओं को काव्य का विषय बनाया जायेगा, तब उनके द्वारा भी सौंदर्यानुभूति नहीं हो सकेगी। जब हम इस प्रकार की कष्ट-कल्पना करेंगे, तब हम समस्या का सही मूल्यांकन नहीं कर सकेंगे। जहां तक सौंदर्य-बोध का प्रश्न है, वह विज्ञान में भी प्राप्य है, वह केवल कला की बपौती नहीं है। वैज्ञानिक सौंदर्य-बोध के लिए एक बौद्धिक अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है। वैज्ञानिक का सौंदर्य-बोध विश्व और प्रकृति की नियमबद्धता तथा समरसता में निहित है। वह, आइन्स्टीन के शब्दों में, विश्व के अंतराल में एक पूर्व-स्थापित सामरस्य (Pre-established Harmony) के सौंदर्य को कार्यान्वित देखता है। वह अपने सिद्धान्त के द्वारा इसी सामरस्य को प्रकट करता है। काव्य भी इस सौंदर्य को ग्रहण कर सकता है, जो कवि के लिए एक नवीन-मूल्य है। आज के कवि को एक ऐसे ही सौंदर्य-बोध की आवश्यकता है जिसमें उसकी भावात्मक एवं संवेदनात्मक सत्ताएं, एक बौद्धिक अन्तर्दृष्टि से समन्वित हो, काव्य की भावभूमि को नवीन दिशा प्रदान कर सके। मैं समझता हूं कि आज की 'नई कविता' इस दिशा की ओर प्रयत्नशील है। इसी मानसिक एवं बौद्धिक स्थिति को डा० जगदीश गुप्त ने "नए स्तर पर रसास्वादन की प्रतिष्ठा" कहा है[1] जो मेरे उपर्युक्त विश्लेषण की पुष्टि करता है। इस नवीन "प्रतिष्ठा" में कवि को विज्ञान के विशाल क्षेत्र से सौंदर्य-बोध के अनेक आयाम मिल सकते हैं। मैक्सवेल के विद्युत-चुम्बकीय सिद्धान्त (Electromagnetic Theory) डारविन के विकासवाद, आइन्स्टीन के सापेक्षवादी सिद्धान्त में और नक्षत्र-विद्या द्वारा उद्घाटित विश्व-रहस्य में, कवि को सौंदर्य तथा अनुभव के अनेक गतिशील आयाम प्राप्त हो सकते हैं। ये अनुभव तात्विक-चिंतन को भी गति दे सकते हैं, और इस प्रकार इस सत्य को हमारे सामने प्रकट करते हैं कि विज्ञान का चिंतन पक्ष भी सम्भव है, जो दार्शनिक क्षेत्र में भी सम्बन्धित है। अतः, यहां पर बौद्धिक अनुभूति का

१—नई कविता (२), पृ० ५.

अपना विशिष्ट स्थान है, और इस सत्य के प्रति संकेत भी है कि सौंदर्य-बोध आज के परिवेश में, ज्ञान का क्षेत्र है। अज्ञेय ने भी ज्ञान और सौंदर्य बोध के सम्बन्ध को इस प्रकार व्यंजित किया हैं—

तनुभूति कहती है कि जो नंगा है
वह सुन्दर नहीं है;
यद्यपि सौंदर्य-बोध ज्ञान का क्षेत्र है।[1]

इस प्रकार, कवि के लिए विश्व और प्रकृति एक नियम (Order) से युक्त प्रतीत हो सकती है। कवि की यह अन्तर्दृष्टि एक अन्य तत्व की अपेक्षा रखती है और वह यह है कि किसी 'वस्तु' को उसके परिवेश या सम्बन्ध में देखना। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो ऐसे स्थलों पर विज्ञान विश्वजनीन आरोहण की ओर अग्रसर होता है जो कला और साहित्य का भी ध्येय है। परन्तु श्री सूलीवैन ने "विश्वजनीन आरोहण" का जितना विकास एवं विस्तार विज्ञान में देखा है, उतना कला में नहीं।[2] यह माना जा सकता है कि कला और साहित्य में 'विश्वजनीनता' का रूप विज्ञान से साम्य रखते हुये भी, पद्धति (Method) की दृष्टि से, कुछ अलग पड़ जाता है। परन्तु फिर भी, कहीं पर वह संधि अवश्य वर्त्तमान है जहां पर खड़े होकर एक कवि दोनों में सामंजस्य ला सकता है। यह सामंजस्य, मेरे विचार से, चिंतन पर आश्रित एक आत्मिक तथा बौद्धिक अन्तर्दृष्टि है। **विज्ञान की दृष्टि से, आधुनिकता की सबसे बड़ी मांग यही अन्तर्दृष्टि है।**

कल्पना की अन्विति—वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में 'कल्पना' का भी एक विशिष्ट स्थान होता है। यहां पर कल्पना का सीमित क्षेत्र नहीं लिया जा सकता है और 'कल्पना' को केवल काव्य और कला तक ही सीमित रखना, उसके व्यापक रूप के प्रति उदासीनता ही मानी जायगी। विज्ञान के क्षेत्र में कल्पना का एक विशिष्ट स्थान है, पर कला और विज्ञान में कल्पना की निहित में तवश्य अन्तर है। अन्तर केवल इतना है कि वैज्ञानिक अपनी कल्पना को अबाध रूप नहीं दे सकता है क्योंकि

१—इत्यलम्, अज्ञेय, पृ० ९४.

२—द लिमिटेशन्स आफ साइंस, जे० डब्ल० सूलीवेन, पृ० १७२

वह उसे प्रयोग एवं तर्क के द्वारा शासित करता है और उसी के आधार पर किसी निष्कर्ष तक पहुंचता है। परन्तु कलाकार की कल्पना इतनी सीमित नहीं होती है, पर कभी कभी वह कल्पना के द्वारा अतिरंजित रूप की सृष्टि भी कर देता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि कवि को विज्ञान की चिन्ता-धारा को व्यंजित करते समय संयम से अवश्य काम लेना पड़ेगा। यदि इसे और भी स्पष्ट रूप में कहूं तो कवि को अपनी कल्पना में बौद्धिक संयम से भी काम लेना पड़ेगा। इसे आज के परिवेश में, हम नवीन भाव-बोध (Sensibility) की भी संज्ञा दे सकते हैं। कल्पना का यह रूप हमें अंग्रेजी काव्य के अनेक कवियों में प्राप्त होता है जिन्होंने अपनी कल्पना को नक्षत्र-विद्या द्वारा उद्घाटित विश्व-रहस्य के प्रांगण में क्रियात्मक रूप प्रदान किया है। बटलर, पोप और मिल्टन आदि कवियों में विश्व-रचना के प्रति जिस कल्पना ने कार्य किया है, वह विज्ञान के अनुसंधानों से शासित हैं।[१] कदाचित, इसी कारण पैस्कल ने किसी स्थान पर कहा है, "यह दृश्यमान जगत, प्रकृति के विराट क्रोड़ मे केवल एक बिन्दु है जिसे हमारी कल्पना हृदयगम कर पाती है। इस विषय का विश्लेषण यथास्थान (विकासवाद तथा सृष्टि रचना) किया जायगा।

इस प्रकार, केवल विज्ञान में ही नहीं, पर समस्त मानवीय क्रियाओ मे कल्पना का एक विशिष्ट स्थान है। जहां तक विज्ञान और कला का प्रश्न है, उनमें कल्पना तथा अनुभव का एक समन्वित रूप ही अपेक्षित है। कवि की रचना प्रक्रिया में इन दोनों तत्वों का सापेक्षिक महत्व, आधुनिक भाव-बोध की सबसे बड़ी मांग है। जब कोई भी कलाकार अनुभव तथा यथार्थ की भूमि को नितांत छोड़कर, केवल कल्पना के पंखो का ही आश्रय लेगा, तब वह आज के भावबोध को, आज की समस्याओं को तथा आज के तत्व-चिंतन को पूर्णतया हृदयंगम करने में असमर्थ रहेगा। प्रसिद्ध वैज्ञानिक-चिंतक डिन्जिल ने, इसी से, एक स्थान पर कहा है "To be expert beyond Experience is to invite disaster."[२] अर्थात अनुभव से परे अपने को,

---

१—साइंस एण्ड इमेजिनेशन द्वारा मारजोरी निकाटसन, पृ० ८–१५.

२—द साइंटिफिक एडवन्चर द्वारा हर्बर्ट डिन्जिल पृ० ३६१

सिद्धहस्त मानना, अपने पतन को आमंत्रित करना है। इस दृष्टि से, केवल विज्ञान में ही नहीं, पर साहित्य तथा कला में भी, नवीन अनुभवों का सापेक्षिक महत्व है। इन्हीं अनुभवों के आधार पर 'ज्ञान' का प्रासाद निर्मित होता है। दूसरे शब्दों में, आधुनिक भाव बोध में 'ज्ञान' का भी अपना विशिष्ट स्थान मानना उचित होगा। परम्परा से यह मान्यता रही है कि काव्य में 'ज्ञान' के विविध रूपों का समावेश, काव्य की काव्यात्मकता (रसात्मकता) को विनष्ट कर देगा, कम से कम, सम्पूर्ण उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में मैं इस अधूरी 'दृष्टि' को मानने में असमर्थ हूं।

ज्ञान का क्षेत्र—आधुनिक वैज्ञानिक-चिंतन ने 'ज्ञान' के सापेक्षिक रूप को हमारे सामने रखा है। उसने ज्ञान की गरिमा को अनेक आयामों में गतिशील किया है। हम सामान्यतः यह मानते आये है कि वैज्ञानिक ज्ञान भौतिक हैं, वह ऐन्द्रिय अनुभव पर आधारित है जो प्रयोग की आधारशिला पर प्रतिष्ठित है। यह वैज्ञानिक ज्ञान का केवल एक पक्ष है। यह माना जा सकता है कि वैज्ञानिक चिंतन केवलमात्र इसी का आधार नहीं लेता है, पर चिंतन के क्षेत्र मे, वह ज्ञान के अभौतिक रूप या तात्विक (Metaphysical) रूप के प्रति भी आकृष्ट होता है। प्रो० आइंस्टीन, प्रो० एडिंगटन तथा प्रो० व्हाइटहेड आदि वैज्ञानिकों ने विज्ञान के इसी व्यापक ज्ञान को ग्रहण किया है और उनके अनेक विचारों में जो चिंतन का स्पष्ट आग्रह प्राप्त होता है, वह विज्ञान को 'दर्शन' का प्रेरक मानता है। इस विचारधारा का, आधुनिक काव्य में, पूरा आख्यान यथास्थान किया जायगा।

जहाँ तक आधुनिक विचारधारा का प्रश्न है, वह भी अनेक रूपों में वैज्ञानिक दृष्टि से प्रभावित प्राप्त होता है। यह एक सत्य है कि गतिशील विचार धारायें सदैव विकासोन्मुख होती हैं और वे किसी सीमित परिप्रेक्ष्य में बद्ध कह नहीं रहती हैं। परन्तु इसका यह तात्पर्य भी नहीं है कि किसी भी विचार धारा (दर्शन) का अपना व्यक्तित्व नहीं होता हैं। इस दृष्टि से, वैज्ञानिक विचार धाराओं का एक अपना व्यक्तित्व है जिसने केवल दर्शन को ही नहीं, पर अन्य मानवीय ज्ञान-क्षेत्रों को भी प्रभावित किया है। यह सम्पूर्ण विषय एक अन्य पुस्तक का विषय है, पर उपर्युक्त सारे विवेचन के प्रकाश में

मैंने जिन मान्यताओं को प्रस्थापित करने का प्रयत्न किया है, वे आगे के सभी अध्यायों में क्रमशः प्रकट होते जायेंगे। आज का काव्य जगत भी उस प्रभाव से अपने को अछूता नहीं रख सका है, और यह सम्भव भी नहीं है। यहाँ पर केवल एक विशिष्ट भाव बोध का प्रश्न है, जो मध्ययुगीन भावबोध से भिन्न पड़ता है। इस प्रश्न का कुछ समाधान मेरे सारे विवेचन से भी स्वयमेव हो जाता है, अतः उसका विस्तार देना व्यर्थ होगा।

इस प्रकार, आज के चिंतन-क्षेत्र में जो संघर्ष तथा समन्वय की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, वे शुभ तो हैं, पर इसके साथ ही साथ, उनकी परीक्षा का प्रश्न भी हैं। विचारों का संघर्ष सदैव ज्ञान का उन्नायक होता है, और मानवीय ज्ञान संघर्ष की कसौटी पर ही खरा उतरता है या उतर सकता है। अतः आधुनिक दार्शनिक चिंतन, चाहे वह किसी भी क्षेत्र का क्यों न हो, उसका औचित्य प्रो० इडिंगटन के शब्दों में "इस बात में समाहित है कि वह कहां तक आध्यात्मिक अनुभव को, एक जीवन-तत्व' के रूप में, स्थान दे सका है ?"[1] यदि मानव मूल्यों का जीवन में महत्व मान्य है, तो इस मूल्य को भी हमें आज के चिंतन में स्थान देना होगा। यही कारण है कि जब हम ज्ञान और मूल्य के सापेक्षिक सम्बन्ध पर विचार करते हैं तो ः ही न कहीं पर, इन दोनों तत्वों का समाहार मानव-जीवन में होता हुआ दिखाई देता है। काव्य के भावबोध में भी यह संघर्ष लक्षित हो सकता है क्योंकि कविता भी भावबोध के माध्यम से 'मूल्य' की ही सृष्टि करती है। मेरा यहा पर यह अर्थ कदापि नहीं है कि काव्य-चेतना केवलमात्र मूल्यों का रंग स्थल है, पर इतना तो अवश्य है कि उस चेतना में, उस भावबोध क मूल्य की अन्तधारा व्याप्त रहने से, वह और भी अधिक सम्प्रेक्षणीय एवं सटीक हो सकती है। यह मूल्य व्यंजित होना चाहिए नकि ऊपर से थोपा हुआ प्रतीत हो, तभी काव्यात्मक भावबोध में उसका महत्व ग्रहण किया जा सकता है।

---

१ एण्ड द अनसीन वर्ल्ड द्वारा आथर एडिंगटन पृ० २९

२ प्राकृतिक-घटनायें और काव्यात्मक भावबोध

प्रवेश—वैज्ञानिक विकास का इतिहास उस समय से प्रारम्भ होता है जब मानव ने प्रकृति के कार्य व्यापार के प्रति जिज्ञासा की दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यह प्रारम्भिक स्थिति आदिमानवीय जिज्ञासा-प्रवृत्ति में प्राप्त होती है, परन्तु उस प्रवृत्ति को हम वैज्ञानिक दृष्टि नहीं कह सकते हैं, क्योंकि उस प्रवृत्ति में भय तथा तर्कहीनता का ही अधिक समाहार प्राप्त होता है। यह वैज्ञानिक दृष्टि उस समय प्राप्त होती है जब मानव ने प्रकृति के कार्यव्यापारों को अनुभव, निरीक्षण प्रयोग तथा तर्क के द्वारा देखने का प्रयत्न किया और उनके आधार पर कुछ सामान्य नियमों का निर्धारण किया। ये सामान्य नियम प्राकृतिक घटनाओं (Phenomenon) के रहस्योदघाटन में भी सहायक हुये और उन घटनाओं के प्रति एक तर्कपूर्ण कार्य-कारण की शृंखला से देखने की एक दृष्टि प्रदान की। इस प्रकार, ये प्राकृतिक-घटनायें भी प्रकृति तथा विश्व के रहस्य को साकार करती हैं और भौतिक विश्व के प्रति हमारे ज्ञान को बढाती हैं। अतः इस प्रकरण के अन्तर्गत हम कुछ ऐसी प्राकृतिक-घटनाओं को लेंगे जिन्होंने काव्यात्मक-भावबोध तथा अभिव्यक्ति में नूतनता का समावेश किया है। यहां पर यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि अधिकांश कवियों ने इन घटनाओं का जो भी प्रयोग यदा कदा किया है, वे अधिकतर सामान्य ज्ञान के ही विषय है; परन्तु फिर भी, इन घटनाओं के प्रयोग में कवियों ने जिस भावभूमि का परिचय दिया है, वह उनकी सर्जन शक्ति पर किसी प्रकार भी प्रश्न चिन्ह नहीं लगाती है? दूसरे शब्दों में, उन्होंने अधिकांशतः उनका प्रयोग वाकशैली (idioms) के रूप में प्रस्तुत किया है। इन घटनाओं के द्वारा

हम यह तो जान सकते हैं कि प्रकृति के कार्यव्यापार कैसे सम्पन्न होते हैं, पर यह प्रश्न पूछना कि ये 'क्या' हैं और "क्यों" होते हैं, कम से कम यह विज्ञान के क्षेत्र के बारह की वस्तु है। इस समस्त स्थिति का पर्यवेक्षण हमें निम्न पंक्तियों में अपरोक्ष रूप से प्राप्त होता है—

इन प्रश्नों का उत्तर नहीं होता
यह हमारा सिद्धांत है
आप क्या हैं और क्यों हुये,
हम नहीं जानते
पर कैसे हुये,
इसका हमें अनुमान है ![1]

समरसता-रूप—इन प्राकृतिक-घटनाओं से एक तथ्य यह भी प्रकट होता है कि सम्पूर्ण जैव और अजैव (Organic and in orgnic worlc) जगत एक स्वतः चालित इकाई है और इसका सचालन प्राकृतिक नियमों पर आधारित है। इन नियमों के द्वारा यह भी स्पष्ट होता है कि प्रकृति की घटनाओं में जो परिवर्तन प्राप्त होता है, उनमें विरोधाभास तो लगता है, पर सत्य में यह विभिन्नता ही कुछ इस प्रकार कार्यान्वित होती है कि उनमें संतुलन एवं समरसता (Harmony) के दर्शन होते हैं। इसी तथ्य को प्रो० आइंस्टीन ने 'पूर्व-स्थापित सामरस्य' की संज्ञा दी है जिसकी ओर प्रथम प्रकरण में संकेत किया जा चुका है। यदि इन विभिन्न घटनाओं का मूल्यांकन करना हो तो, मेरे विचार से, उनका मूल्यांकन इसी दृष्टि से अपेक्षित है कि उनकी विषमता में एक अन्तर्निहित सामरस्य है जो प्रकृति का एक सत्य है। इसी प्राकृतिक-सत्य को हम विविध-रूपों एवं घटनाओं में साकार देखते हैं। पंत का काव्य यदा कदा इसी तथ्य की प्रतिध्वनि करता प्रतीत होता है। उदाहरण स्वरूप उनकी ये निम्न पंक्तियां इसका प्रमाण है—

१—नई कविता (५—६), पृ० १६४ पर डा० विपिनकुमार अग्रवाल की कविता 'इस युग के दफ्बेदार'

आवर्तन गति से विरोध जग के अनुप्राणित ।
विश्व संचरण जीवन का वैषम्य संतुलित ॥ [1]

अस्तु, संतुलन ही प्रकृति अथव प्राकृतिक घटनाओं का सत्य है क्योंकि इस संतुलन के द्वारा ही कार्यव्यापारों में अन्योन्याश्रिता का स्वरूप प्राप्त होता है। वैज्ञानिक कार्यव्यापारों एवं प्राकृतिक-घटनाओ का जो भी रूप काव्य की भावभूमि में प्राप्त होता है, उसे हम विवेचन की सुविधानुसार कुछ विशिष्ट वर्गो में विभाजित कर सकते है। कहीं कहीं पर यह भी द्रष्टव्य होगा कि कवियो ने इन घटनाओं को अपनी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, तो कहीं कहीं पर उसके माध्यम से किसी 'सत्य' अथवा विचार-भूमि का दिग्दर्शन किया गया है। इन विशिष्ट-वर्गों का अध्ययन अपेक्षित है।

प्रकाशगत घटनायें (The phenomenon of Ligat)—वैज्ञानिक विकास क्रम में अनेक प्राकृतिक घटनाओं का विश्लेषण तथा अध्ययन प्राप्त होता है, जिसके अधार पर हम 'प्रकाश' से (तथा अन्य घटनायें भी) संबंधित अनेक तथ्यों से अवगत हुये है जो हमारे ज्ञान को एक नई दिशा प्रदान करते है। यह तो एक सामान्य तथ्य एवं अनुभव का विषय है कि प्रकाश की रश्मियां (जो प्रकाश अणुओं का समूह रूप है) किसी "माध्यम" के द्वारा ही यात्रा करती हैं या गतिशील होता है। इस माध्यम को हम दिक् या 'स्पेस' की संज्ञा देते हैं। प्रकाश सदैव पुंजो में ही यात्रा करता है और यह यात्रा एक सरल—रेखा में ही सम्पन्न होती है। काव्य-बोध के क्षेत्र में इस सामान्य अनुभव का एक ऐसा रूप प्राप्त होता है जो कवि को कल्पना और पदार्थ की एक समन्वित भूमि पर प्रतिष्ठित करता है। प्रसाद, कुंवर नारायण, मुक्तिबोध आदि कवियों में इसी धरातल का दिग्दर्शन होता है, परन्तु प्रसाद की कल्पना अधिक रोमानी हो उठी है जो कल्पना का एक आयाम छायावादी काव्य में रहा है। उदाहरणस्वरूप—

रश्मियां बनीं अप्सरियां
अंतरिक्ष में नचती थीं।

१—सौवर्ण सुमित्रानन्द पंत पृ० ४६

परिमल का कन कन लेकर,
निज रंगमंच रचती थीं ॥[1]

इस कल्पना के विपरीत हमें कुछ ऐसी यथार्थोन्मुख कल्पनायें भी प्राप्त होती है जो प्रकाश की उन घटनाओं से सम्बन्धित हैं जो हमें दृष्टि भ्रम और फोकस (Focus) की घटनाओं की ओर संकेत करती हैं। इन उदाहरणों मे प्रकाशगत घटनाओं का एक काव्यात्मक रूप मिलता है जिसे हम सामान्यतः देखते अथवा जानते हैं। मृगमरीचिका प्रकाश एवं रेत का एक अद्भुत व्यापार है जो हम में दृष्टिभ्रम उत्पन्न करता है। इसी व्यापार को कवि ने भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है जिसे हम एक Idiom या वाक्शैली के रूप मे ग्रहण कर सकते हैं—

सम्भव है रेत के किसी वीरान प्याले में—
झूमती हुई मरीचिका हो—
तुम नहीं ![2]

इसी प्रकार 'एकलव्य' महाकाव्य में इंद्रधनुष का जो संकेत प्राप्त होता है, वह भी प्रकाश एवं जल के पारस्परिक व्यापार का फल है। डा० रामकुमार का काव्य भी, प्रसाद की तरह, कल्पनाभूलक अधिक है, अतः उनकी काव्यात्मक भावभूमि में भी रोमानी वातावरण यदा कदा मिल जाता है। प्रकाश की यह घटना भी प्रतिबिंब (Reflection) के सिद्धांत पर आधारित है, पर काव्य में इस घटना का प्रयोग एक स्वतन्त्र रूप में न होकर वह भी एक दृश्य या भाव की व्यंजना हेतु ही हुआ है—

पिता मुस्करायें—ज्यों वारिबिंदुगामी रश्मि,
खींचती है इंद्रधनु जल भरे मेघ में।[3]

इन प्रकाशगत घटनाओं का मूल्यांकन इस बात में समाहित है कि वे कहां तक कवि की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति में सहायक हुये हैं और उनके द्वारा

१—कामायनी, प्रसाद, पृ० २९४ आनन्द सर्ग
२—चक्रव्यूह, कुंवरनारायण, पृ० १९ "तुम नहीं"
३—एकलव्य, रामकुमार वर्मा, प्रेरणा सर्ग, पृ० ९०

कवि का भावनात्मक आयाम कहां तक विस्तृत हुआ है ? उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त एक अन्य उदाहरण 'फोकस' के नियम को लेकर, कवि की अभिव्यक्ति को एक अनूठा अर्थ प्रदान करता है। आधुनिक चिंतन को यह एक नव-रूप में रखता है जो 'फोकस' को समस्त क्रियाओं का केन्द्री भूत रूप मानता है। देखिये—

कौन ? सौदागर
कहो क्या बेचते हो ?
जी—यही बस आतीशी शीशा :
बड़े काम का है, जब जहां भी जाईये
बिना आग, आग लगाईये
बस चिलचिलाती धूप में
इसको—जरा इस रूप में
सूरज तरफ कर
कभी नीचे, कभीऊपर
बिंदु—"फोकल" खोज लीजिए
मौज लीजै
सभी कुछ सुलगाइये।[3]

विद्युतगत घटनाएं—प्रकाशगत घटनाओं के साथ ही हम विद्युत् की तरंगों से सम्बन्धित घटनाओं को ले सकते हैं। यहां पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस विद्युत् से मेरा तात्पर्य आकाशीय विद्युत से अधिक है न कि पृथ्वी पर उत्पन्न कृत्रिम विद्युत् से। विद्युत तरंगों के द्वारा गतिशील होती है और शून्य में विद्युत् का दर्शन एक प्राकृतिक व्यापार का फल है। इस प्रकार गति और तरंग—ये दो तत्व विद्युतीय घटना के केन्द्रबिन्दु है जिसका संकेत भावना के स्वरूप के विश्लेषण में प्राप्त होता है। यहां पर कवि की कल्पनात्मक अनुभूति दो सत्यों को एक समान धरातल पर लाकर प्रतिष्ठित करती है। इस उदाहरण में यह भी प्रकट होता है कि किस प्रकार एक वैज्ञानिक घटना को (जो सामान्य है) हृद्गत-भाव का प्रतिरूप बनाया

१—तीसरा सप्तक, आतीशी शीशा, प्रयाग नारायण त्रिपाठी पृ० ५३

जा सकता है और उसे कहीं अधिक अर्थवत्ता (Significauce) प्रदान की जा सकती है—

विड्त् तरंग जैसी राशि राशि भावना,
चक्राकार रूप में प्रखर गतिशील है ।[1]

इस उदारहण की अपेक्षा 'मुक्तिबोध' की एक कविता "अंधेरे में", वैज्ञानिक तथ्य की सुन्दर व्यजना मिलती है, जो मेरे विचार से, 'विद्युत-चुम्बकीय' शक्ति (Electromognetic Force) के माध्यम से काव्यसर्जना को एक सुन्दर आयाम प्रदान करती है। इस लम्बी कविता में चिंतन एवं आधुनिक भावबोध का एक सुन्दर समाहार प्राप्त होता है। इस कविता में आधुनिक जीवन की चितन-प्रक्रिया का एक ऐसा रूप मिलता है जो मानव जीवन एवं वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के आपसी संघर्ष का एक रूप प्रस्तुत करता है। निम्न पक्तियों में विद्युन और चुम्बकीय शक्ति का एक तथ्य पूर्ण समन्वय तथा दूसरी ओर, सम्बन्धगत सापेक्षता का आधुनिक दृष्टिकोण भी दर्शनीय है—

सब ओर विद्युत्तरंगीय हलचल
चुम्बकीय आकर्षण
प्रत्येक वस्तु का निज निज आलोक
प्रत्येक अर्थ की छाया में अन्य अर्थ
झलकता साफ साफ !![2]

ध्वनिगत् (शब्द) घटनाएं—प्रकाश के समान ध्वनि (Sound) से सम्बन्धित घटनाओं पर काव्यात्मक अभिव्यक्ति के दर्शन हमें आधुनिक काव्य में प्राप्त होते हैं, पर अपेक्षाकृत कम संख्या में। ध्वनि, तरंगे के द्वारा ही यात्रा करती है और उनकी गति एक लाख छिआसी हजार मील प्रति सेकेंड की मानी गई है। इस तथ्य से यह प्रकट होता है कि ध्वनि में भी तरंगे होती है और गति के द्वारा उसेका अस्तित्व 'नित्य' माना गया है। शब्द या ध्वनि

१—एकलव्य, रामकुमार वर्मा, पृ० ७५,
२ चाँद का मुँह टेढ़ा है द्वारा मुक्तिबोध पृ० ३१५ ३१६

सदैव गतिशील 'सत्य' है जो कभी समाप्त या लुप्त नहीं होती है। इसीसे, हमारे वेदान्तों में 'शब्द-ब्रह्म' की कल्पना प्राप्त होती है। एकलव्य महाकाव्य में शब्द की प्रकृति और गति के बारे में जो भी कहा गया है, वह उपर्युक्त तथ्य के अनुकूल है, चाहे संदर्भ में अन्तर हो—

शब्द की तरंग
चलती है इस सत्य से,
किसने की चोट, किस पर
किस गति से।[1]

इस सामान्य प्रवृत्ति के अतिरिक्त ध्वनि के अन्तर्गत वह रूप भी आता है जिसे हम 'शब्द' कहते हैं क्योंकि जिस शब्द का उच्चारण किया जाता है, वह ध्वनि के संयोग से ही फलीभूत होती है। इसे ही हम 'शब्द-ध्वनि' की संज्ञा देते हैं। ये शब्द-ध्वनियां मानवीय क्रियाओं तथा विचारों के द्योतक होते हैं।[2] शब्द की इस विशेषता के कारण और उसकी नित्यता के कारण ही कवि को यह कहना पड़ा:—

और यों
हमारा हर शब्द
किसी नए ग्रहलोक में
एक जंमान्तर है।[3]

इस काव्यगत अभिव्यक्ति में शब्द को एक सर्जनात्मक रूप में भी ग्रहण किया गया है क्योंकि आज का कवि सर्जनात्मक प्रक्रिया के प्रति अत्यन्त सचेत है और वह जाने अनजाने में, वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के द्वारा भी अपनी भावाभिव्यक्ति कर देता है।

जलगत घटनाएं—मानव जीवन तथा प्रकृति के अंतराल में ओषजन और उद्जन (Hydrogen) का सापेक्षिक महत्व, एक वैज्ञानिक सत्य है। जल की संगठना में इन दोनों तत्वों का न्यूनाधिक समाहार अपेक्षित होता है

१—एकलव्य, अभ्यास सर्ग, पृ० ६४.
२—हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद, वीरेन्द्रसिंह पृ० ८०–८१.
३—अभी, बिल्कुल अभी केदारनाथ सिंह, पृ० ८०

जो एक रासायनिक प्रक्रिया का फल है। काव्यात्मक संवेदना में जल की विविध प्रक्रियाओं का यदा कदा संयोग प्राप्त होता है जो तरल स्थिति से लेकर वाष्पीकरण दशा तक चरितार्थ होती है। इन्हीं विभिन्न स्थितियों में तरलता और सघनता की दशाओं के द्वारा कवि ने एक सामान्य प्राकृतिक घटना को एक 'सत्य' के व्यंजनार्थ प्रयोग किया है। जब जल का तापमान $0°C$ से नीचे हो जाता है तब वह सघनन क्रिया (Condensation) के द्वारा 'हिम' के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस घ .ना के द्वारा प्रसाद ने एक 'परम सत्य' का भी संकेत किया है, यथा—

नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था, एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।[1]

तथ्यतः इन पंक्तियों में एक दार्शनिक समस्या का समाधान ही अधिक है, पर उसकी पुष्टि एक प्राकृतिक घटना के द्वारा की गई है।

इससे भी स्पष्ट तथा सारगर्भित व्यंजना वाष्पीकरण की उस क्रिया में निहित है जो अपने को 'मेघों' में, उचित तापमान एवं घनत्व के द्वारा, परिवर्तित करता है। इस घटना को कवि ने काव्य-सर्जन-प्रक्रिया के निमित्त प्रयोग किया है :

मन के वाष्पों का सूक्ष्म जल,
बन रहा स्थूल जीवन का घन
उसमें घनत्व आ रहा सजल
वह तड़ित गर्भ भरता गर्जन।[2]

इन उदाहरणों में एक सत्य यह भी ज्ञात होता है कि पदार्थ परिवर्तनशील है, पर उसका नाश नहीं होता है, वह एक रूप से दूसरे रूप में आता है, पर यह रूपान्तर एक चिरन्तन 'सत्य' है।

१—कामायनी, प्रसाद, चिंता सर्ग, पृ० १.
२—उत्तरा, पंत, स्वप्न वैभव, पृ० ८४.

इन उदाहरणों के अतिरिक्त जल का उपयोग मानव जीवन के सुख तथा आनन्द के लिये भी होता है जब हम उससे विद्युत उत्पन्न करते हैं। जल से विद्युत का उत्पन्न करना भी एक रासायनिक क्रिया है और विद्युत शक्ति को व्यजित करने के लिये हम "हार्स पावर" शब्द का प्रयोग करते हैं। डा० धर्मवीर भारती की 'बांध' कविता में, अत्यन्त कुशलता से जो "बिजली के शक्तिवान घोड़ों" का संकेत प्राप्त होता है, वह उपर्युक्त दृष्टि का ही प्रतिरूप है :—

लेकिन नहीं है निरर्थक यह
बंधने से उसको भी अर्थ मिल जाता है
इसकी ही हर लहरों में
बिजली के शक्तिवान घोड़ों हैं सोये हुये।[1]

इन सोये हुये अश्वों को वैज्ञानिक क्रियाशील करता है जो हमें "शक्ति" का वरदान देते हैं। अर्थहीनता को भी अर्थवत्ता मिल जाती है जब उसे सीमित किया जाता है।

भूगर्भीय घटनाएं—भूगर्भशास्त्र का क्षेत्र पृथ्वी के अंतराल से सम्बन्धित घटनाओं से है जो पृथ्वी की रचना एवं संगठना से सम्बन्धित हैं। पृथ्वी सौर-मंडल का एक ग्रह है और इस ग्रह का अध्ययन, जहां तक पृथ्वी का सम्बन्ध है (यहां वैज्ञानिक अर्थ में पृथ्वी का तात्पर्य धरातल से तथा उसके अंतराल से है), उसका एक प्रमुख अंग है। पृथ्वी से ही हमें अनेक खनिज पदार्थ, अनेक तत्व तथा उसकी परतों में विकास के अवशेष चिन्ह, चट्टानो तथा फॉसिल्स के रूप में आज भी विद्यमान हैं जो पृथ्वी की आयु के कलन में एक सहायक तत्व है। विकासवाद के इस पक्ष पर यथास्थान विचार किया जायेगा[2], पर यहां पर पृथ्वी के अन्तराल से सम्बन्धित रासायनिक क्रियाओं से उद्भूत अनेक घटनाओं पर ही सीमित विचार अपेक्षित है।

भूगर्भवेत्ताओ ने पृथ्वी के अन्तराल में 'अग्नि' एव अन्य पदार्थों और तत्वों के एक ज्वलनशील पदार्थ को मान्यता प्रदान की है जो "लावा" के

१—सात गीत वर्ष, भारती, पृ० ८१.
२—दे० तृतीय प्रकरण।

रूप में पृथ्वी को फोड़कर (ज्वालामुखी) अपना विकराल रूप प्रदर्शित करता है। यह समस्त क्रिया पृथ्वी के अन्दर होनेवाली रासायनिक प्रक्रिया का फल है। इस तथ्य का एक अत्यन्त स्पष्ट संकेत नरेन्द्र शर्मा की इन पंक्तियों में चरितार्थ हुआ है :—

भूगर्भ फोड़ बहता लावा
भूतल पर उंगते अग्नि श्रृंग।
नभ नील कमल पर मंडराते
लपटों के लोहित मत्त-भृंग।[1]

यह 'अग्नि' का रूप एक 'आदिम रूप' है क्योंकि पृथ्वी के जन्म के साथ ही इसका सम्बन्ध रहा है। ग्रह निर्माण-सिद्धान्त के अन्तर्गत ग्रहों का निर्माण एक जलते हुये परिक्रमाशील पिंड से ही माना गया है,[2] जो यह तथ्य प्रकट करता है कि पृथ्वी की रचना में अग्नि (या पदार्थ) का हाथ रहा है जो क्रमशः ठंडी होकर, इस स्थिति तक पहुंची है। कवि ने इस 'आदिम-शक्ति' को एक नवीन सम्बोधन देते हुए, उसके विकराल रूप को इस प्रकार व्यंजित किया है—

वह अग्निमुखी है धन्य
कि जिसकी बर्बर आदिम शक्ति
फोड़ व्यवधानों को—
वसुधा की छाती फाड़
प्रकट करती है अपना नग्नरूप।[3]

यह अग्नि रूप पदार्थ जो बहिर्गत होता है, उसका अपना एक औचित्यमय रूप है, परन्तु धरती के हृदय की गरमी, जब मिट्टी के ढेरों को चट्टानों में परिवर्तित कर देती है, तब इन चट्टानों की परतों में हमें ऐसे ऐसे जीव तथा जंतुओं के अवशेष दबे हुये प्राप्त हुये हैं, जो हमारे विकास तथा प्राणी जगत के विकास की ओर अंगुलि निर्देश करते हैं। इन परतों में विकास की

१—अग्निशस्य, नरेन्द्र शर्मा, अग्निदेवता, पृ० ४.
२—देखिये आगे तृतीय प्रकरण में 'सृष्टि रचना' में।
३—ओ अप्रस्तुत मन, भारतभूषण अग्रवाल, देखा हुआ शहर, पृ० ४७

उन रहस्यमयी स्थितियों तथा दशाओं का संकेत मिलता है जो विकास-तंतु के अनजाने धागों को मिलाने में समर्थ होता है। इस सम्पूर्ण स्थिति को मुक्तिबोध की निम्न पंक्तियाँ अत्यन्त स्पष्टता से हमारे सामने रखती हैं—

> पृथ्वी के पट में घुस कर जब,
> पृथ्वी के हृदय की गरमी के द्वारा सब,
> मिट्टी के ढेर ये, चट्टान बन जाएंगे,
> तो इन चट्टानों को—
> आंतरिक परतों की सतहों में,
> चित्र उभर आयेंगे
> हमारे चेहरे के, तन बदन के, शरीर के।[1]

अन्तिम दो पंक्तियों में विकासवाद से सम्बन्धित इस तथ्य का संकेत है कि हमारा विकास भी इन गुप्त रहस्यमय अवशेषों से सम्बन्धित है, इनके बगैर प्राणी जगत अपनी कल्पना ही नहीं कर सकता है। मुक्तिबोध का विद्रोही व्यक्तित्व जो अस्तित्व के लिए छटपटा रहा है, इन पंक्तियों में वैज्ञानिक तथ्य के द्वारा, अपनी छटपटाहट को अभिव्यक्ति कर रहा है।

१—चांद का मुंह टेढ़ा है, गजानन्द माधव मुक्तिबोध, पृ० ५०.

३ | विकासवाद

प्रवेश—पिछले अध्याय में प्राकृतिक घटनाओं के विश्लेषण के अन्तर्गत यदा कदा मानवीय या प्राणी जगत के विकास का संकेत किया गया है जो इस तथ्य की ओर निर्देश करता है कि विकासवादी-सिद्धान्त जीवन एवं ब्रह्माड के सभी आयामों तथा क्षेत्रों को अन्तर्हित कर सकता है। इस प्रकार, विकासवाद का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है क्योंकि इसके द्वारा हम यह जानने में समर्थ हुये हैं कि जैव और अजैव क्षेत्रों (Organic and Inorganic) में एक तारतम्यता है—दोनों का सम्बन्ध अटूट है। विकासक्रम में इन दोनों का समान एवं सापेक्षिक महत्व है। दोनों के मध्य में 'शून्य' नहीं है, पर एक से ही दूसरे का (जैव का) विकास सम्भव हुआ है। यह तथ्य स्तनधारियों अथवा रीढ़धारियों और रीढ़विहीन प्राणियों के बारे में पूर्ण चरितार्थ होता है।

संयोग—इस विश्लेषण से दूसरा तथ्य यह भी समक्ष आता है कि विकासवादी परम्परा का मूल तत्व संयोग (Chance) ही है। सत्य तो यह है कि सृष्टि–रचना के मूल में, अथवा उसके प्रादुर्भाव में संयोग का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सृष्टि–रचना के प्रसंग में इस तथ्य का प्रत्यक्षीकरण होगा।[१] संयोग के साथ एक अन्य तत्व अनिश्चितता (Improbability) भी है जो विकासवाद के संदर्भ में तथा अन्य घटनाओं के बारे में आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन की महत्वपूर्ण प्रस्थापना है। इसी प्रकार, ,संयोग भी महत्वपूर्ण प्रस्थापना हैं और प्लेटो जैसे दार्शनिकों ने संयोग के महत्व को इस प्रकार माना है—"इस संसार में प्रत्येक वस्तु संयोग से ही आई है और वह

१—दे० इसी अध्याय में आगे।

भी प्राकृतिक नियमों की अनायास प्रक्रिया से।"[१] यह मत आज भी वैज्ञानिक चिंतकों को मान्य है और यह मान्यता विकासवाद के संदर्भ में और भी अधिक सत्य है।

परिवर्त्तन का रूप—विकासवाद के संदर्भ में परिवर्त्तन के स्वरूप का आख्यान संयोग तथा अनिश्चितता के तत्वों के द्वारा और भी अधिक कुतूहल पूर्ण और व्यापक अर्थ का द्योतक हो जाता है। विकास क्रम अपने में एक अपूर्ण घटना है और इसी से, विकास के साथ 'परिवर्तन' संयुक्त है। 'परिवर्त्तन' प्रकृति का नियम है, पर यह परिवर्त्तन समस्त घटनाओं के अन्तराल में निहित होने पर भी, 'समरसता' की सृष्टि करता है। यहां पर भी सापेक्षता का संकेत मिलता है। अतः, समस्त विवेचन को इन पंक्तियों में साकरता प्राप्त होती है

मानस, मानुषी, विकासशास्त्र
है तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान।[२]

अस्तु विज्ञान में परिवर्तन का अर्थ किसी वस्तु का तिरोहित होना या नष्ट होना नहीं है। इसका अर्थ रूपांतर (Transformation) होना है। विकासवाद, चाहे वह जीव जगत से सम्बन्धित हो या सारी सृष्टि से, सबके अन्तराल ने परिवर्तन (रूपांतर) के द्वारा ही विकास क्रम अग्रसर होता है। इसी दशा को, 'दिनकर' ने कुछ तार्किक विधि से समक्ष रखा है—

यह परिवर्तन ही विनाश है।
तो फिर नश्वरता से
भिन्न मुक्त कुछ नहीं।
किन्तु परिवर्त्तन नाश नहीं
परिवर्त्तन प्रक्रिया प्रकृति की सहज प्राण धारा है।[3]

जब हम परिवर्त्तन और विकास को इस प्रकार एक सापेक्षिक दृष्टि से देखेंगे, तब वैज्ञानिक सौंदर्य बोध का एक स्वस्थ रूप प्राप्त होगा। सौंदर्य-

---

१—द लिमीटेशन्स आफ साइन्स, द्वारा सूलीवैन, पृ० ७३ से उदधृत।
२—युगांत, पंत, पृ० ६०
३ उवशी द्वारा रामधारी सिंह दिनकर पृ० ८१

बोध के स्वरूप पर प्रथम अध्याय में विचार किया जा चुका है। आधुनिकता की दृष्टि से, सौंदर्य बोध की अनुभूति ज्ञान-सापेक्ष है। प्रकृति के नियम, जिनमें परिवर्तन एक है, उसकी अर्थवत्ता में तथा उसके रहस्य में, एक प्रकार का सौंदर्य-बोध प्राप्त होता है जो एक विशिष्ट संवेदनशीलता का परिचायक है।

अस्तु, वैज्ञानिक विकासवाद का जो भी स्वरूप आधुनिक हिन्दी काव्य में प्राप्त होता है, उसे हम दो दृष्टियों अथवा दो विभागों में अध्ययन कर सकते हैं। ये दोनों विभाग विकासवाद से ही सम्बन्धित हैं। प्रथम विभाग है ब्रह्मांड या विश्व--रचना से सम्बन्धित जिसे हम अंग्रेजी मे 'क्रियेशन' या 'सृष्टि' कहते है तथा दूसरा विभाग प्राणी जगत के विकास से सम्बन्धित है। इन दोनों पक्षों के द्वारा 'विकासबाद' अपने सम्पूर्ण रूप मे प्राप्त हो सकेगा। प्रथम हम सृष्टि--रचना या नक्षत्र-विद्या (Astronomy) से सम्बन्धित विकासवाद पर विचार करेगें।

(क) सृष्टि-रचना (Creation)—जहां डारविन का विकासवाद इस धरती से सम्बन्धित प्राणि-जगत के विकास-क्रम को समक्ष रखता है[1], वही नक्षत्र-विद्या (Astronomy) सम्पूर्ण--सृष्टि के रहस्य तथा उसके उदगम--विकास को सम्मुख रखता है। दूसरे शब्दों में, एक वैज्ञानिक सारे दृश्य तथा अदृश्य ब्रह्मांडों के प्रति तर्किक दृष्टि रखता है जो हमारे विश्व के प्रति एक नये प्रकार से सोचने को गति प्रदान करता है। यह "नया--प्रकार" क्या है ? आधुनिक वैज्ञानिक-चिंतन ने इस ओर एक दार्शनिक भावभूमि का परिचय दिया है। इस चिंतन के द्वारा दो बातें विशेष महत्व रखती है। प्रथम, वैज्ञानिक प्रस्थापनाएं कभी भी पूर्ण रूप से निश्चित नहीं होती है और यही तथ्य समस्त ब्रह्मांड के प्रति भी सत्य है। विश्व--रचना और उसका भावी रूप क्या होगा, यह केवल 'अनुमान' का ही विषय है। दूसरी वस्तु यह है कि वैज्ञानिक चिंतन 'क्या' और "क्यों" को नहीं जानता, वह तो केवल 'कैसे' को ही सामने रखता है। वह एक प्रकार से "कैसे" का तो उत्तर दे सकता है, पर "क्यों" का उसके पास उत्तर नहीं है। यदि मैं कहूं कि

१—इसी में आगे (ख) खंड में देखें

विज्ञान 'कैसे' या 'किस प्रकार' के द्वारा ही चिंतन या दर्शन के क्षेत्र में प्रविष्ट होता है, तो अत्युक्ति नहीं होगी। इस सम्पूर्ण स्थिति का सुन्दर काव्यात्मक रूप हमें डा० विपिन कुमार अग्रवाल की लम्बी कविता "इस युग के दावेदार" में प्राप्त होती है। इस कविता में मैं, (स्वयं कवि) संशय और वैज्ञानिक के संवादों के द्वारा, कवि ने एक नवीन भावभूमि का परिचय दिया है जो यथार्थ, अनुभूति और तर्क का समन्वय प्रस्तुत करती है। यहां पर आधुनिक भावबोध अपनी सम्पूर्ण सम्भावनाओं के सहित आता है। कविता के विशेष अंश इस प्रकार हैं जो उपर्युक्त विवेचन को स्पष्ट करते हैं—

संशय— युग किसी का नहीं होता
ज्ञान सबका अधूरा है
जीवन क्या है ?
जल का घनत्व हिम से क्यों ज्यादा है ?
तीर की सही गति और स्थिति क्या है ?
किधर पड़ेगा शराबी का अगला कदम
इन प्रश्नों के उत्तर क्या है !

वैज्ञानिक उत्तर देता है—

इन प्रश्नों का उत्तर नहीं होता
यह हमारा सिद्धांत है
आप क्या हैं और क्यों हुये
हम नहीं जानते,
पर कैसे हुये इसका हमें अनुमान है।[1]

पर कवि ने, अन्त में आकर संशय के द्वारा जो कुछ भी कहलाया है, वह दर्शन के महत्व को प्रतिपादित करता है। प्रत्येक ज्ञान की अन्तिम परिणति 'दर्शन' के महाज्ञान में होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात जो कही गई है, वह यह कि विज्ञान का अर्थ और उसका औचित्य बगैर दर्शन के असम्भव है :—

'बेकार है विज्ञान जिसमें
दर्शन का मान नहीं होता।'[2]

१—नई कविता (५–६) पृ० १६३—१६४.
२—वही पृ० १६४

अस्तु, आधुनिक चिंतन इसी दार्शनिक क्षेत्र की ओर क्रमशः अग्रसर हो रहा है। आधुनिक हिन्दी कविता में इस वैज्ञानिक चिंतन का एक स्वस्थ काव्यात्मक रूप मिलता है जिसका विवेचन यथास्थान आगे के अध्याय में किया जायेगा। जहां तक नक्षत्र-विज्ञान और उससे सम्बन्धित विश्व रहस्य ने जिन नवीन प्रस्थापनाओं को सम्मुख रखा है, वे हमें चिंतन के नवीन क्षेत्र में ले जाने को बाध्य करते हैं। आगे के विवेचन से यह क्रमशः स्पष्ट होता जायेगा।

वैज्ञानिकों द्वारा यह मान्य है कि समस्त सृष्टि (ग्रह मण्डल, नक्षत्र, नीहारिकायें) हाइड्रोजन के एक गोलाकार पिंड से आविर्भूत हुई है। इस दशा में प्राप्त हाइड्रोजन, प्रयोगशाला की हाइड्रोजन से भिन्न है। परन्तु यह हाइड्रोजन एक धातु के रूप में द्रव्य दशा में वर्त्तमान रहती है। यही कारण है कि सूर्य का अन्दुरूनी भाग का तापमान १५,०००,०००°C (१५ लाख) के लगभग होता है और उसके धरातल का तापमान अपेक्षाकृत कम होता है।[1] ग्रहों तथा नक्षत्रों के आविर्भाव में इसी 'तत्व' का विशेष महत्व है जिसे पृष्ठभूमि पदार्थ (Background Material) कहा जाता है। यही बृहद तप्त गैस का गोलाकार पिंड निरन्तर परिक्रमा करने की दशा में क्रमशः ठंडा होने लगा, और इस प्रकार परिक्रमा की गत्यात्मक शक्ति इस बृहद पिंड (सूर्य) से ग्रहों के रूप में रूपांतरित होने लगी। अतः सूर्य की परिक्रमा-गति धीरे धीरे कम होने लगी और ग्रहों की परिक्रमन-गति अपेक्षाकृत अधिक होने लगी। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप ग्रह क्रमशः सूर्य से दूर होने लगे। यही कारण है कि सूर्य से ग्रहों तथा नक्षत्रों की दूरी इतनी अधिक प्राप्त होती है।[2] इस वैज्ञानिक प्रस्थापन का एक संकेतात्मक रूप हमें 'निराला' की प्रसिद्ध कृति 'तुलसीदास' में प्राप्त होती है। इस छन्द में 'घूमायमान घूर्ण्य' शब्द का प्रयोग हुआ है जो संदर्भ के प्रकाश में, "पृष्ठभूमि—पदार्थ' के रूप में ग्रहण किया जा सकता है क्योंकि स्वयं कवि ने इस 'घूर्ण्य' से नक्षत्रों तथा ग्रह-मंडलों का उदभव दिखाया है—

१—द साइन्टिफिक एडवेंचर, हर्बर्ट डिन्जिल, पृ० १९८.
२—द नेचर आफ यूनीवर्स फ्रेड हायल पृ० ६६

घूमायमान वह घूर्ण्य प्रसर,
धूसर समुद्र शशि ताराहर
सूझता नहीं क्या ऊर्ध्व, अधर क्षररेखा ![1]

इन पंक्तियों में दार्शनिक भावभूमि के साथ विश्व-रहस्य के प्रति आश्चर्य प्रकट किया गया है जो दृष्टि से परे है और अनन्त है ! कल्पना कीजिए उपर्युक्त दशा की, जो वाष्प के चतुर्दिक प्रसार की ओर संकेत करती है। इसी प्रकार, प्रसाद ने कामायनी में वाष्पीकरण और सौर-चक्र का जो अन्योन्य सम्बन्ध प्रदर्शित किया है, वह भी एक वैज्ञानिक 'सत्य' का काव्यात्मक संकेत है—

वाष्प बना उजड़ा जाता था
या वह भीषण जल-संघात।
सौर चक्र में आवर्त्तन था
प्रलय निशा का होता प्रात॥[२]

यदि सूक्ष्म दृष्टि से प्रसाद की पंक्तियों का अनुशीलन किया जाय तो उस में कल्पना का जो भी रूप है, वह उच्छंखल नहीं होने पाया है, क्योंकि कल्पना की गति 'सत्य' से संयमित है। इसी से, कवि ने इस सम्पूर्ण सृष्टि को एक "विराट-आलोडन" के अन्दर क्रियाशील एवं गतिशील माना है।[3]

इन ग्रहों तथा नक्षत्रों के आविर्भाव में यह माना जाता है कि 'पृष्ठ-भूमि-पदार्थ' कभी भी समाप्त नहीं होता है, वह रूपांतरित होकर, विविध रूपों में परिवर्तित होता है ! यही परिवर्तन ही सृजनशीलता है ! इससे भी यही प्रकट होता है कि पदार्थ नित्य है, उसका नाश नहीं होता है ! यह पदार्थ का नाश, विश्लेषण और फिर उसका संश्लिष्ट होना—एक तथ्य है जो त्रिमूर्ति की भावना में भी प्रतीकात्मक रूप से प्रकट होता है ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी क्रमशः सृजन, स्थिति और प्रलय के रूप है और अंत में, प्रलय से फिर, सृजन

१—तुलसीदास, निराला, पृ० ५५

२—कामायनी, प्रसाद, पृ० २०

३—वहीं, पृ० १९

का क्रम शुरू होता है; और यह क्रम निरन्तर गतिशील रहता है ! इसाई धर्म मे भी त्रिमूर्ति (Trinity) के ज्यूपीटर (ब्रह्मा), नेपच्यून (विष्णु) और प्लेटो (शिव) भी इसी कार्य के प्रतीक रूप है।[1] इस सम्पूर्ण स्थिति का एक सूत्रीय रूप इस पंक्ति में दर्शनीय है—

> **प्रत्येक नाश, विश्लेषण भी**
> **संश्लिष्ट हुए, बन सृष्टि रही ।**[2]

सृष्टि के रहस्य को जानने के लिए केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है, पर नक्षत्र-विद्या और भौतिकशास्त्र ने कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रस्थापनाओ को समक्ष रखा है जो नये रूप से सृष्टि-रचना पर प्रकाश डालते हैं। आधुनिक काव्य में इन प्रस्थापनाओं के कहीं प्रत्यक्ष रूप से और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से संकेत मिलते हैं। समष्टि रूप से यह कहना अनुचित न होगा कि हमारे कवि-गण इस नवीन क्रांति के प्रति सचेत अवश्य हैं। आज के वैज्ञानिक युग मे यह असम्भव है कि काव्य का क्षेत्र ही नहीं, ज्ञान का कोई भी क्षेत्र, विज्ञान के स्पर्श से अछूता रह जाय ! ये मुख्य प्रस्थापनाए चार हैं जिनका सम्बन्ध सृष्टि से अभिन्न है, वे हैं—

(१) गुरुत्वाकर्षणशक्ति (Force of Gravity)

(२) गति (Motion)

(३) दिक् और काल (Space and Time)

(४) विस्तारित होता हुआ विश्व (Expanding Universe)

ग्रहों के बारे में यह माना जाता है कि उनकी गति, आकर्षणशक्ति पर आश्रित है और गुरुत्वाकर्षण ही वह शक्ति है जो ग्रहों तथा नक्षत्रों को संतुलित किए हुए हैं। न्यूटन तथा केपलर ने इस नियम के द्वारा सारे सौर-मण्डल में एक समरसता के दर्शन किये थे। प्रत्येक ग्रह एवं नक्षत्र का अपना अपना व्यक्तित्व है, पर अकेले वे अपनी गुरुत्वाकर्षणशक्ति का उपयोग करने में असमर्थ हैं, उसका महत्व तो सापेक्षिक है। मुक्तिबोध की काव्य चेतना इस 'सत्य' का हृदयंगम कर सकी है—

१—हिंदू, कस्टम्स, एण्ड सेरीमनीज, ड्यूबस, पृ० ५४७

२—कामायनी प्रसाद पृ० ७३

धरित्री व नक्षण
तारागण
रखते हैं निज निज व्यक्तित्व
रखते हैं चुम्बकीय शक्ति, पर
स्वयं के अनुसार
गुरुत्वा-आकर्षण शक्ति का उपयोग
करने में असमर्थ ![1]

यही 'समरसता' 'लास-रास' के रूप में भी प्राप्त होती है क्योंकि प्रसाद ने कोटि नक्षत्रों को गतिशील दिखाया है; और यह गतिशीलता आर्कषण सापेक्ष है। यहां पर आर्कषरण की बात नितांत स्पष्ट नहीं है। वह पृष्ठ भूमि में ही ज्ञातव्य है। कवि ने एक सामान्य ज्ञान को समक्ष रखा है जो विज्ञान–सम्मत कहा जा सकता है :—

कोटि कोटि नक्षत्र, शून्य के महाविवर में,
लास-रास कर रहे लटकते हुए अधर में।[2]

यहां पर शून्य ही "दिक्" की धारणा का प्रतिरूप है जिस पर आगे विचार किया जायेगा ! नक्षत्रों की यह गति जो आर्षकरण सापेक्ष है, नित्य तथा अनन्त हैं; पर कुंवरनारायण ने इस पर संदेह प्रकट किया है और उनके सामने इसका निदान केवल एक प्रश्न चिन्ह ही है—

क्या बुरा है मान लूं यदि,
चाल का सम्पूर्ण आर्कषण
अनिश्चित मार्ग
जिसका अन्त है शायद
कहीं भी
या कहीं भी नहीं ![3]

आधुनिक चिन्तन क्षेत्र में, विज्ञान ने गुरुत्वाकर्षरण शक्ति की धारणा में भी परिवर्तन कर दिया है जो अप्रत्यक्षतः कुंवरनारायण की कविता में

१—चांद का मुंह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ० ८४ "मुझे नहीं मालूम"
२—कामायनी, प्रसाद, पृ० ७३ कामसर्ग।
३ चक्रव्यूह कु० ना० वदूट क्रम' पृ० १२५

एक प्रश्न चिन्ह के रूप मे ही प्राप्त है। यह परिवर्तन प्रो० आइंस्टीन के इस मत में है कि गुरुत्वाकर्षण कोई शक्ति नहीं है, पर ग्रहों तथा नक्षत्रों की आकर्षण और गति, जिसका कि वे पालन करते हैं, वह उनका सबसे सरल तथा सीधा मार्ग है; और उनकी यह स्वाभाविक प्रवृत्ति यह प्रदर्शित करतीं है कि हम एक यूक्लिडियनहीन विश्व में रह रहे हैं।[1] इस धारणा के बावजूद अब भी वैज्ञानिक, गति और आकर्षण, दोनों के महत्व को किसी न किसी रूप में मानते हैं। आधुनिक कवि, इस तथ्य के प्रति किसी न किसी रूप में सचेत है, नहीं तो शायद वह इतनी गहराई से यह बात न कह सकता—

धरित्री जो तुम्हें जड़ दिख रही है
निरन्तर वह धुरी पर घूमती है।
जगत में झूलती नक्षत्र-माला
चरण गति के निरन्तर चूमती है॥[2]

विश्व का सत्य रूप उसी समय हृदयंगम किया जा सकता है, जब हम दिक् और काल के स्वरूप तथा उनके सम्बन्ध कि प्रति जान सकें। आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन दिक् और काल को सापेक्ष मानता है जबकि न्यूटन ने इन धारणाओं को निरपेक्ष रूप में स्वीकार किया था। प्रो० आइंस्टीन ने अपने सापेक्षवादी सिद्धांत में दिक् और काल को सापेक्ष मानते हुए, उन्हें सीमित माना है, पर दूसरी ओर, वे सीमित होते हुए भी अपरिमित (Unbounded) हैं।[3] यह धारणा अपने मूल रूप में एक तात्विक धारणा सी (Metaphysical) लगती है। सत्य में, यह धारणा आधुनिक युग के चिंतन-क्षेत्र में एक क्रांति है जिसने 'दर्शन' के क्षेत्र को भी प्रभावित किया है। इसी तात्विक धरातल पर दिक् और काल का एक रहस्यमय रूप समक्ष आता है जिसकी प्राचीरों में सारा विश्व आबद्ध है! 'दिनकर' ने अपने 'उर्वशी' महाकाव्य में दिक्काल का जो अभेद प्रदर्शित किया है, वह उनके सापेक्षिक महत्व का ही सूचक है और जिस तत्व से दिक्काल आबद्ध है, उसे उन्होंने "महाशून्य" की संज्ञा दी है—

१—द लिमिटेशन्स् आफ साइन्स, जे० एन० डब्लू सूलीवेन, पृ० ५९
२—नई पीढ़ी, नई राहें, रामकुमार चतुर्वेदी, पृ० १ 'ठहर जाऊं'
३—द फिलासी आफ फिजिकल साइंस सर एडिंगटन पृ० ८५

महाशून्य के अंतर-गृह में, उस अद्वैत भवन में ।
जहां पहुंच दिक्काल एक हैं कोई भेद नहीं है ।[1]

कवि की यह दार्शनिकता, वैज्ञानिक-चिंतन पर आश्रित ज्ञात होती है। स्वयं आइंस्टीन ने सापेक्षवादी सिद्धांत को अव्यक्त अथवा आदि भौतिक माना है, जो अनुभव से सर्वथा दूर है।[2] इस प्रकार, आधुनिक चिंतन क्रमशः व्यक्त से अव्यक्त और भौतिक से अभौतिक या तात्विक क्षेत्र की ओर गतिशील है। इसका पूर्ण आख्यान "वैज्ञानिक-दर्शन" नामक अध्याय में आगे किया जायेगा।

दिक् और काल की यह रहस्यमय भावना आधुनिक भावबोध के लिये एक चुनौती ही नही है, पर कवि की सृजनात्मकता का एक 'अयाम' भी है! डा० धर्मवीर भारती ने अपने खंडकाव्य "कनुप्रिया में, पौरांणिक, भावभूमि का सहारा लेकर, उसे आधुनिक भावबोध का सुंदर माध्यम बनाया है। वहाँ पर कवि नें कनुप्रिय को दिग्वधू और कालवधू के रूप में चित्रित कर, इन दोनों का सापेक्षिक महत्त्व, 'विराट, की सापेक्षता, में इस प्रकार व्यंजित किया है—

मैं तो वह हूं जिसे दिग्वधू कहते हैं, कालवधू—
समय और दिशाओं की सीमाहीन पकडंडियों पर
अनंत काल से
अनंत दिशाओं में
तुम्हारे साथ साथ चली आ रही हूं
चलती चली जाऊंगी[3]

इस प्रकार दिक् और काल सदैव चलते रहे हैं और न जाने कब तक उनका "आस्तित्व" रहेगा, यह एक रहाय है। इस प्रकार, इतना तो कहा ही जा सकता है कि आधुनिक कवि में दिक् या शून्य के प्रति एक स्पष्ट धारणा है जिसमें विरोध की भावना अत्यंत न्यून है। मुझे तो ऐसा लगता है कि आज

१—उर्वशी, दिनकर, पृ० ७०
२—ऐसे इन साइन्स, एलबर्ट आइंस्टीन, पृ० ६९
३—कनुप्रिया, डा० धर्मवीर भारती, पृ० ३९

का कवि, दिक् की धारणा के प्रति बहुत ही सचेत है और उसकी सर्जनात्मकता एक नए आयाम को स्पर्श कर रही है !

आधुनिक काव्य की भावभूमि में दिक् या शून्य की धारणा का बहुत कुछ श्रेय हमारे दार्शनिक चिंतन को भी है। कवियों ने इस चिंतन का सहारा लेकर, आज के वैज्ञानिक चिंतन को एक नये रूप में देखने का प्रयत्न किया है ! विज्ञान ने 'दिक्' की विराटता को एक तार्किक रूप में सामने रखा है। समस्त सृष्टि का सृजन तथा विलय, इस विराट 'दिक्' के आयाम में सम्पन्न हो रहा है। यह दिक् और काल की भावना अध्यान्तरिक (Subjective) है और यही नहीं, अन्य अनेक नियम (पदार्थ के विभाजन से सम्बन्धित) भी मूलतः अध्यान्तरिक हैं।[1] इस दिक् में से ही सृष्टि रूपी वृत का उदय हुआ है और यह 'शून्य' भी तो किसी से 'आबद्ध' है और यह विराट अनन्तता है जिसे हम 'ब्रह्म' के रूप में मानते हैं। अज्ञेय ने इस सम्पूर्ण समस्या का समाधान इन पंक्तियों में किया है—

न कुछ में से वृत यह निकला कि जो फिर
शून्य में जा विलय होगा
किंतु वह जिस शून्य को बांधे हुए है
उसमें एक रूपातीत ठण्डी ज्योति है ![2]

आज के वैज्ञानिक चिंतन ने दिक् को सदैव विस्तारित होते हुए माना है। यह क्रिया, नीहारिकाओं के सृजन तथा विनाश (रूपांतर) की क्रमिक क्रिया का फल है। कवि की कल्पना, तर्क तथा तथ्य का सहारा लेकर, इस अदृश्य विश्व को, नीहारिकाओं की सापेक्षता में देखने का प्रयत्न करता है। उस समय दिक् की विराटता में वह जिस दृश्य की कल्पना करता है, वह विज्ञान-सम्मत है :—

अक्सर आकाशगंगा के
सुनसान किनारों पर खड़े होकर

१—साइन्स एण्ड द मॉडर्न वर्ल्ड, ए० एन० व्हाइटहेड, पृ० १४१
२—आंगन के पार द्वार, अज्ञेय, पृ० ५८

जब मैंने अथाह शून्य में
अनन्त प्रदीप्त सूर्यों को
कोहरे की गुफाओं में पंख टूटे
जुगनुओं की तरह रेंगते देखा है ![1]

ऐसा ज्ञात होता है जैसे कवि टैलिस्कोप के द्वारा उसके चित्र का संकेत कर रहा हो ! दिक् के अथाह सागर में न जाने कितने सौर-मण्डल हैं जो हमारी दृष्टि से परे हैं। कितने बनते रहते हैं और कितने "मूल पदार्थ" में तिरोहित होते रहते हैं। यह चक्र निरन्तर चला करता है। गिरिजाकुमार माथुर की अनेक कविताओं में इस तथ्य का संकेत यदा कदा प्राप्त होता है। आधुनिक भावबोध का जितना सुन्दर विकास माथुरजी में द्रष्टव्य है, वह कदाचित् अन्यत्र दुर्लभ है। कवि की निम्न-पंक्तियां इसका प्रमाण है—

अंतरिक्ष सा अंतर जिसमें अगणित
ज्योति ब्रह्मांड समाये !
सूरज के बड़े बबे साथी,
बनते मिटते हैं आए ![2]

यह तो सृजन की बात हुई जिसमें विसर्जन समाहित है ! वैज्ञानिक प्रस्थापना भी यही है कि सर्जन और नाश अन्योन्याश्रित हैं और विश्व रचना के संदर्भ में यह और भी सत्य है ! आधुनिक कवि सृजन को जितना महत्व देता है, उतना ही नाश-क्रम को भी अपनी भावाभिव्यंजना में महत्व प्रदान करता है। यह विनाश-प्रक्रिया, मुक्तिबोध की एक सुन्दर कविता "अंतःकरण का आयतन" में चरितार्थ हुई है—

बिना संहार के सर्जन असंभव है,
समन्वय झूठ है
सब सूर्य फूटेंगे
और उनके केन्द्र टूटेंगे

१—कनुप्रिया, भारती, पृ० ५०

२—धूप के धान, गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १४ 'चरित्र की केसर'

उड़ेंगे खण्ड
बिखरेंगे गहन ब्रह्मांड में सर्वत्र
उनके नाश तुम में योग दो।[१]

दिक् की इस विराटता में सृजन और नाश का खेल निरन्तर चल रहा है जो विश्व तथा दिक् के प्रति एक रहस्य भावना की सृष्टि करता है! महाकवि मिल्टन भी सृष्टि के रहस्य–सागर को देखकर शायद कह उठा था—

हे विश्व! इतनी दूर तक विस्तृत
और इतनी दूर की तेरी सीमायें
सत्य में, ये तेरी यथार्थ
परिधि हैं।[२]

इस सम्पूर्ण विवेचना के अन्तराल में "अस्तित्व" का भी प्रश्न उठता है। यह एक संकट-बोध है जिस पर विशाल सचेत है! माथुर जी ने आदमी का सापेक्षिक अनुपात, इस विश्व में निश्चित किया है जिसमें अगणित ब्रह्मांड एवं सृष्टियां हैं और हमारी पृथ्वी उनमें एक छोटा सा अंग है।

लाखों ब्रह्मांडों में
अपना एक ब्रह्मांड
हर ब्रह्मांड में
कितनी ही पृथिवयां
कितनी ही भूमियां
कितनी ही सृष्टियां
× × ×
यह है अनुपात
आदमी का विराट से![३]

१–चांद का मुंह टेढ़ा है, मुक्तिबोध पृ० २१०

२–पैराडाइज लास्ट, मिल्टन, पृ० २३०—Thuo far extend, thus far thy bounds? Thus be thy just circumference, O world!

३–शिला पंख चमकीले, गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ६५

आज का विज्ञान हमारे ही नहीं, पर समस्त ब्रह्मांड के अस्तित्व के प्रति सचेत है, उसके द्वारा उसमें निराशा या पलायन (Escapism) की प्रवृत्ति नहीं है क्योंकि 'पलायन' विज्ञान की प्रवृत्ति से सर्वथा अलग है। जब वह निहारिकाओं तथा अपने ही सौर-मंडल के प्रति अनिश्चित है, तो वह उसके एक 'अंश',—हमारे ग्रह पृथ्वी के प्रति केवल संभावना ही कर सकता है जो विगत घटनाओं पर आश्रित है। उसके अनुसार हमारी पृथ्वी, मंगल और बुद्ध करोड़ों अरबों वर्ष बाद, सूर्य में समाहित हो जायेंगे; और इनके स्थान पर कोई अन्य सौर-मंडल स्थान ले लेगा। यही बात नीहारिकाओं के प्रति भी सत्य है।[1] यह क्रम समय तथा दिक् की सीमाओं में बंधा हुआ है। इसीसे, 'आनंत-सृष्टि' विज्ञान का सत्य है और हमारा अस्तित्व भी आभा-समात्र है! जब हम अपने अस्तित्व का कहीं पर्यवसान चाहते हैं, तो हम उस दशा को एक 'अन्तिम-धारणा' का रूप दे देते हैं। यहां पर हमें सुरक्षा का एक माध्यम मिल जाता है। पर मैं यह कहूंगा कि यह सुरक्षा भी एक छायामात्र है, पर आवश्यक भी है। इस दार्शनिक स्वरूप का विवेचन हम आगे यथास्थान (वैज्ञानिक चिंतन) करेंगे! इतना सत्य है कि हमारा अस्तित्व आभासत्मात्र है; स्थिति कुछ इस प्रकार है—

बिंदु हूं मैं,—
मात्र केन्द्राभास : वह जो
हर असीम ससीम
हर रूप, हर आकार का विस्तार ![2]

एडिंगटन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "द इक्सपैंडिंग यूनीवर्स" (The Expanding Univuerse) में विश्व के इसी 'ड्रामा' का संकेत किया है। यह 'ड्रामा' किसी 'ब्रह्मांड-द्रष्टा' के लिये खेला जा रहा है। विस्तारित होते हुये विश्व की धारणा यह बाध्य करती है कि एक 'ब्रह्मांडीय-सत्ता' है जिसका शरीर अनेक अन्तर्दिकीय नीहारिकाओं से निर्मित है जिसके फैलने से उसका शरीर भी फैलता है।[3]

१—द नेचर आफ यूनीवर्स, फ्रेड हॉयल, पृ० ५२
२—तीसरा सप्तक, 'मैं बिन्दु' प्रयाग नारायण त्रिपाठी, पृ० ५९
३—द लिमीटेसन्श आफ साइंस से उद्धृत, पृ० १८०

(ख) प्राणी विकास (डारविन का विकासवाद)—डारविन का विकासवादी सिद्धांत, केवल विज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं, पर मानवीय चिन्तन में एक क्रान्ति को जन्म दे सका। प्रत्येक सिद्धांत की अपनी सीमायें होती हैं और विकासवादी सिद्धांत की भी सीमायें हैं। इस सिद्धांत को लैंपलेस, लामार्क, मैंडिल, ह्वाइटहेड, हक्सले और महर्षि आरविंद ने व्यापक रूप देने का प्रत्यन किया है। प्रजातियों के उद्भव (Origin of Species) में यह सिद्ध किया कि जीवधारियों का उद्भव तथा विकास अजैव जगत (Inorganic World) से सम्बन्धित होते हुये भी, विकास क्रम में एक प्रगति का सूचक है। इस प्रकार एक कोष (Unicellular) के प्राणी से जिसे हम अमीबा (Amoeba) कहते हैं, अनेक कोषों के प्राणियों का विकास सम्भव हो सका और इसकी अंतिम परिणति 'स्तनधारियों' में हुई। इस प्रकार 'जड़' कहा जाने वाल बनस्वपति संसार का महत्व विकासवाद में मान्य हुआ। अतः जीव, वनस्पति, पशु तथा पक्षी सभी एक 'मौलिक सूत्र' में बंधे हुये हैं, पर अपने में सभी स्वतन्त्र है—

> **हवा, पानी, उजेला, मेघ**
> **वनस्पति, जीव पशु पक्षी,**
> **सभी हैं एक मौलिक सूत्र में आबद्ध,**
> **सभी हैं किन्तु अपने दायरे में मुक्त।**[1]

इससे भी अधिक स्पष्ट संकेत कुंवर नारायण की एक कविता में प्राप्त होता है। उन्होंने वनस्पति जगत को समय की 'दरारों' में सदैव से वर्त्तमान पाया है और 'उसे' ही 'आगत' का परमसूचक माना है—

> **फिर भला कैसे न मानूं**
> **यह वनस्पति ही अमर है**
> **जो सदा बसती रही, पिछली**
> **दरारों, में समय की।**[2]

१—शिला पंख चमकीले, गिरिजाकुमार माथुर, पृ० २८ 'खत' कविता

२—नई कविता (३) एक ही अनुरक्ति तक कविता पृ० ४१

इस सारी स्थिति को जूलियन हक्सले ने, डारविन के विकासवादी सिद्धांत के आधार पर समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। उसने विकास के अन्तर्गत चार तत्वों को प्रमुखता प्रदान की है, वे हैं—समय, परिवर्त्तन, विकास और प्राकृतिक-निर्वाचन (Natural selection), जिनका अन्योन्य सम्बन्ध है। उसका कहना है कि डारविन ने जीवशास्त्र में 'समय' की भावन को समाहित किया। और हमें बाध्य किया कि मानव इतिहास एक सामान्य परिवर्त्तन-क्रम का विस्तार है जो प्राकृतिक निर्वाचन की स्वाभाविक प्रक्रिया के द्वारा कार्यान्वित होता है।[1]

विकासवादी विचारधारा में कुछ प्रमुख मान्यताएं हैं जिनके द्वारा विकास-क्रम घटित होता है। ये मान्यतायें मूलतः प्राकृतिक निर्वाचन के अंग ही हैं—ये मान्वतायें हैं—(१) अस्तित्व के लिए संघर्ष (Struggle for Existence) (२) शक्तिशाली का विजयी होना (Survival os the Fittest) (३) पैतृकसंस्कार (Heredity) और (४) प्राकृतिक निर्वाचन। इन मान्यताओं का न्यूनाधिक रूप विकासवाद में सर्वथा मान्य रहा है, यह दूसरी बात है कि कुछ विकासवादी चिंतकों ने किसी को कम और किसी को अधिक महत्व दिया है। उदाहरण-स्वरूप, हाल्डेन और हक्सले ने संघर्ष को उतना महत्व नहीं दिया है जितना उसके स्थान पर सहयोग या सह-अस्तित्व को।[2] प्रसाद ने 'कामयनी' महाकाव्य में संघर्ष के साथ साथ सह-अस्तित्व का जो रूप प्रस्तुत किया है, वह केवल निम्न जीवधारियों के लिये ही नही, पर उच्च जीवधारियों के लिये भी सत्य है। प्रसाद इस संघर्षमूलक विकास-वाद को इस प्रकार मान्यता प्रदान करते हैं—

द्वन्दों का उद्गम ही सदैव,
शाश्वत रहता यह एक मंत्र।[3]

परन्तु प्रसाद केवल यहीं पर नहीं रुकते हैं। वे संघर्ष और द्वन्द के धरातल पर आविर्भूत स्पर्द्धा को महत्व देते हैं। शक्तिवान की विजय उसी समय विजय मानी जायेगी, जब वह लोक-कल्याण सापेक्ष हो। यह स्पर्द्धा

१—मैन इन द मार्डर्न वर्ल्ड द्वारा जू० हक्सले, पृ० १९३

२—द यूनिटी एण्ड डाइवर्सिटी आफ लाइफ, द्वारा जे० बी० एस० हाल्डेन पृ० ३८।

३—कामायनी उद्धा पृ० १६३।

वैज्ञानिक-दर्शन को एक नई चेतन—दृष्टि प्रदान करती है। प्रसाद के अनुसार संघर्ष, स्पर्द्धा और द्वन्द का लक्ष्य आत्मपरिजीवन ही नहीं, पर लोक-कल्याण है—

स्पर्द्धा में जो उत्तम ठहरें, वे रह जावें।
संसृति का कल्याण करें, शुभ मार्ग बनावें।[१]

दूसरी ओर अंग्रेजी कवि ग्रैंट एलन ने विकासवादी मान्यता को उसके जड़ रूप में ही ग्रहण किया है, उसमें वह अन्तर्दृष्टि नहीं है जो प्रसाद की उपर्युक्त पंक्तियों में प्राप्त होती है—

For the fittest will always survive
While the weakest go the wall.[२]

अन्य मान्यताओं में, पैतृक संस्कार के प्रति, अपरोक्ष संकेत हमें आज की कविता में प्राप्त होते हैं। परन्तु इस मान्यता को भी ग्रहण करने में कवियों ने स्वतन्त्रता का यथोचित आश्रय लिया है। पूर्वजों का संस्कार इतिहास चाहें अचीन्हा रहे, पर उस संस्कार को हम सर्वथा से ढोते आ रहे हैं और ढोते रहेंगे। इन संस्कारों का जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है जो जैविक कोष में प्राप्त क्रोमोसोम (Chromosome) के विभाजन पर आश्रित है। नरेश मेहता ने 'हस्ताक्षर' कविता में, पैतृक संस्कारों के महत्व पर इस प्रकार प्रकाश डाला है—

हमारे पूर्वज :
अबांचे शिलालेखों से,
अचीन्हीं लिपि सही
इतिहास हैं फिर भी—
जिसे हर पीढ़िया कंधा दिये
लायी यहाँ तक।[3]

१—कामायनी, संघर्ष, पृ० १८५।
२—ए बुक आफ साइंस वर्स, सं० डब्लू० इस्टबुड, पृ० १५८।
३—बोलने दो चीड़ को नरेश मेहता पृ० ४३ ४४

इस उदाहरण में, वैज्ञानिक सत्य को एक अर्थवत्ता देने का प्रयत्न किया गया है जिसे आधुनिक काव्य-बोध के दायरे में लाया गया है। इसी प्रकार, टामस हार्डी ने 'हेरीडिटी' नामक कविता में 'हेरीडिटी' का मानवीकरण करते हुये, उसे नित्य कहा है—

> **आई एम द फैमिली फेस,**
> **फ्लेश पेरीशश आई लिव आन**
> **प्रोजेक्टिग ट्राइट एण्ड ट्रेस,**
> **थ्रू टाइम टू टाइम अनॉन !**[1]

डारविन ने स्तनधारियों तक विकास क्रम की चरम् परिणति की मान है। दूसरे शब्दों में स्तनधारियों में मानव नामधारी प्राणी को वह भौतिक क्षेत्र में सबसे अधिक विकसित मानता है। परन्तु आज का विकासवादी—दर्शन उससे आगे जाने को प्रयत्नशील है। विकास क्रम अब भी प्रगति-पथ पर अग्रसर हैं, पर यह प्रगति शारीरिक रचना तथा भौतिक क्षेत्र मे न होकर मानसिक तथा नैतिक धरातल पर सम्भव हो रही है। हम विकास के एक नए चरण में प्रवेश कर रहे हैं जो ली कॉम्टे डू नूँ (Lecomte Du Nouy) के शब्दों में विकासवाद मे एक क्रांति है।[2] यह नवीन विकास का चरण उस स्वतन्त्रता में निहित है जो व्यक्ति की आदिम पशु प्रवृत्तियो तथा वासनाओं से ऊपर उठकर मानसिक तथा आत्मिक क्षेत्र में विकासक्रम को आगे बढ़ा सकेगा। गिरिजाकुमार माथुर की यह पंक्ति कि "तन रचना मे मानव तन सबसे सुन्दर,[3] सत्य में मानव को भौतिक क्षेत्र में सबसे विकसित प्राणी घोषित करता है, तो दूसरी ओर उसके मानसिक तथा आत्मिक विकास की सम्भावनाओं के प्रति उतना जागरुक नहीं है। इसी क्षेत्र में आकर मानवीय महत्व का, उसके दिव्य रूप का संकेत प्राप्त होता है। अनेक जीवशास्त्रियों का मत है कि मनुष्य अपनी इस निम्न प्रवृत्ति से, जो उसे विरासत के रूप में अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है, उससे वह पूर्णतया छुटकारा नहीं पा

१—ए बुक आफ साइंस वर्स, पृ० १७१।

२—ह्यूमन डेस्टनी, ली कॉम्टे डू नूँ, पृ० ७८।

३—धूप के धान, गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १०७ 'देह की आवाज'

सकता है, अधिक से अधिक उसका उन्नयन कर सकता है। विकास क्रम में इस निम्न प्रवृत्ति का अपना एक विशिष्ट स्थान है क्योंकि वह भी विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इस कड़ी ने ही मानव प्राणी को स्मृति तथा अन्तश्चेतना (Memory anc Conscience) का वरदान दिया। इस निम्न भौतिक प्रवृत्ति को कदाचित पंतजी ने "स्थूल धरातल" की संज्ञा दी है जो क्रमशः सूक्ष्म मनस्तल में परिवर्तित हो रही है—

बदल रहा अब स्थूल धरातल।
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल ॥[१]

मनुष्य के भावी विकास की दिशा, प्रसाद के इस कथन में प्राप्त होती है जिसमें मानव के अंदर या उसके आवरण में एक विश्व ही निर्मित हो रहा है। सत्य में, यह 'गुप्त विश्व' ही वह मानसिक चेतन लोक है जिसके आधार पर मानव का भावी विकास सम्भव हो सकेगा।

मनुष्य आकार चेतना का है विकसित।
एक विश्व अपने आवरणों में है निर्मित।[२]

जीवशास्त्रीय स्तर पर जो भौतिक विकासगत प्रयत्न होते हैं, वे ही क्रमशः मनोवैज्ञानिक स्तर में परिवर्तित होते हैं। यहां पर प्रत्यक्ष रूप से भारतीय मनोविज्ञान की मान्यता भी स्पष्ट होती है। भारतीय मनोविज्ञान केवल मन की प्रक्रियाओं का सीमित मनोविज्ञान नहीं है। वह मन को एक प्राथमिक स्तर मानता है जिसकी आधारशिला पर व्यक्ति उच्च स्तरों का उद्घाटन कर सकता है। दूसरे शब्दों में, महर्षि अरविंद के द्वारा प्रस्थापित उपचेतना क्रमशः अतिचेतना के क्षेत्र में पदार्पण करेगी। यही मानव के मानवीय विकास का उर्ध्व आरोहण है।[3] इसीसे, स्वामी अखिलानन्द का मत है कि "हिन्दू मनोविज्ञान सम्पूर्ण मन का अध्ययन करता है, जबकि पाश्चात्य मनोविज्ञान मन की कुछ दशाओं (Phases) के अन्दर ही सीमित रह जाता है।"[४] सत्य में मानसिक क्रियाशीलता की यह मांग है कि वह

१—उत्तरा, पंतजी, पृ० १।

२—कामायनी, संघर्ष, पृ० १९२।

३—द लाइफ डिवाइन, अरविंद, पृ० ५३०—३२, भाग २।

४—हिन्दू साइकोलाजी, अखिलानन्द, पृ० १५।

मानव के भावी विकास को एक गति प्रदान करे, नहीं तो सम्पूर्ण परिवर्तन अर्थहीन भी हो सकता है। इस स्थिति का एक सम्यक् रूप हरीश भादनी की निम्न पंक्तियों में दर्शनीय है—

रह जाये ना
बिना अर्थ परिवर्तन
मिट जाये ना
कहीं मनुज की क्रियाशीलता
इसीलिये व्याधिग्रस्त परते उघार कर
मिट्टी नई उलीयें
× × ×
नए नए सांचों में सजा सजा कर
रूप नया ही दे दें
किसी निरूपम निष्कलुष सृजन को।[1]

बात तो यहां आधुनिक सृजनशीलता की है, पर इन पंक्तियों में विकासवादी परम्परा का भावी रूप भी अपरोक्ष रूप से प्राप्त होता है। सृजन की यह क्रियाशीलत मानवीय चेतना की भाग्यविधायिनी है। यही मानव का दिव्य जीवन है। गीता की ये पंक्तियां मन और आत्मा के स्तर को सामने रखकर, आत्मा को ही. ऊंचा मानती है—

"इन्द्रियों से महान पदार्थ है, मन इन दोनों से उच्च है, बुद्धि मन से महान् है और जो बुद्धि से भी उच्च हैं, वह आत्मा है"।[2] मानस चेतन का यह स्तर ही मानव-विकास का केन्द्र है और कविवर पंत ने इसी दशा को 'संक्रमण बेला' की संज्ञा दी है।

अन्तश्चेतन सूक्ष्म भुवन हो रहे पल्लवित।
निकट संक्रमणबेला, भू मानस विकास की॥[3]

१—सपन की गली, हरीश भादनी, 'सत्य का आभास' पृ० ४६—५०
२—गीता, कर्मयोग, श्लोक ४२, पृ० १३२।
३—सौवर्ण, पंत, 'देववचन' पृ० १३२।

यह मानस विकास की संक्रमण बेला व्यक्ति की स्वातन्त्र्य भावना और अन्तश्चेतना का विषय है जो 'ईश्वर' द्वारा मनुष्य को वरदान रूप में प्राप्त हुये हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक विकासवादी चितक डु नू के शब्दों में 'ईश्वर ने अपनी महानता के अंश 'स्वतन्त्रता' और अन्तश्चेतना को मानव प्राणी के निमित्त प्रदान किया है और यह मानव में ईश्वर की एक चिनगारी का रूप ही है।" ४

१—ह्यूमन डेस्टनी, पृ० ८७।

"By giving man Liberty and conscience, God abdicted a part of his Omnipotence in favour of his creature and this represents the spark of God in man."

४ आधुनिक भावबोध और परमाणु भावना

प्रवेश—विकासवाद के सम्यक् विवेचन के अन्तर्गत सृष्टि रचना के मूल में 'पदार्थ' की धारणा, एक महत्वपूर्ण धारणा ही नहीं है, पर सत्य में, यह धारणा सृष्टि-रहस्य का मूलाधार है। पदार्थ की संगठना में अणु और परमाणु का अन्यो-याश्रित सम्बन्ध है। वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं में पदार्थ के सबसे छोटे अंश को 'अणु' कहते हैं, और अणुओं के समूह को 'परमाणु' कहते हैं। पदार्थ की धारणा में इन अंशों का आपसी सम्बन्ध अपेक्षित है। सर एडिंगटन ने ऐसे पदार्थ को 'चेतन-पदार्थ' (Conscious matter) की संज्ञा दी है और जिसमें यह सम्बन्ध नहीं होता है, उसे 'साधारण-पदार्थ' (Ordinary Matter) की संज्ञा दी है।[1] जहां तक विज्ञान का प्रश्न है वह अधिकतर, तार्किक अन्योन्य-सम्बन्ध के अनुभवों को ही अपना विषय बनाता है और उसी आधार पर सत्य का निरूपण करता है। इस दृष्टि से, अणु, पदार्थ की एक महत्वपूर्ण इकाई है और उसका सापेक्षिक सम्बन्ध तथा उसकी रचना, विश्व-रहस्य का मूल है। इस अध्याय के अन्तर्गत 'अणु भावना' से मेरा तात्पर्य यही है कि अणु रचना तथा उसकी प्रक्रिया के रहस्यों ने, आधुनिक कवि के भावबोध को किस सीमा तक प्रभावित किया है और उसके माध्यम से उन्होंने कहां तक सत्य और रहस्य का उद्घाटन किया है?

अणु भावना का रूप—आधुनिक विज्ञान के इतिहास में 'अणु' का आविष्कार एक महत्वपूर्ण क्रांति का रूप है क्योंकि इस धारणा ने विश्व रचना और पदार्थ-रचना के रहस्यों को प्रत्यक्ष कर दिया है। अणु रचना का ठीक वही रूप है जो सौर मंडल का है। अणु के बीच में एक केन्द्र स्थान होता है जिसे केंद्रक (Nucleus) कहते हैं जिसके चारों ओर, ग्रहों के समान,

---

१—द फिलासफी आफ फिजिकल साइंस, सर आर्थर एडिंगटन, पृ. १८४

एक निश्चित वृत्त में, एलक्ट्रान परिक्रमा किया करते हैं. एलक्ट्रान के अति-रिक्त न्यूट्रान, प्रोटान, मीसोट्रान आदि कण, अणु की रचना में योगदान देते हैं। इन सभी कणों का आपसी सम्बन्ध अनिवार्य है जो आकर्षण के द्वारा स्थित रहते हैं, पर साथ ही शतिशील भी रहते हैं ! यहां पर प्रसाद की एक कल्पना दर्शनीय है। उन्होंने अणुओं को आकर्षणविहीन बताया है, लेकिन इस आकर्षणविहीनता में क्रियाहीनता है जो एक मार स्वरूप है। अतः नकारात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा उन्होंने इस सत्य को अप्रत्यक्ष रूप से समक्ष रखा है कि 'आकर्षण और गति' अणु के आवश्यक तत्व हैं—

आकर्षणविहीन विद्युत्कण
बने भारवाही थे भृत्य ।[1]

आधुनिक काव्य में अणु भावना का रूप नितांत विज्ञान सम्मत भी प्राप्त होता है, यह दूसरी बात है कि कहीं कहीं पर उसमें स्वयं कवि की अपनी कल्पना ही प्रमुख हो गई हो ! इस कल्पना में भी एक यथार्थमूलक वैज्ञानिग दृष्टि है जिसके बगैर हम अधिकांश रचनाओ को ठीक प्रकार से समझ नहीं सकेंगे ! सबसे सुन्दर अभिव्यक्ति मुक्तिबोध और प्रसाद की है क्योंकि इन दो कवियों ने आयु-रहस्य को वैज्ञानिक दृष्टि से समझा और जाना है ! यह दूसरी बात है कि प्रसाद शैव दर्शन से प्रभावित थे, और वहां पर भी 'अणु' की भावना विद्यमान थी। दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान की मान्यताओं का भी उन्होंने सम्यक् समाहार किया है ! मुक्तिबोध में वैज्ञानिक मत का एक शुद्ध रूप प्राप्त होता है। उदाहरणस्वरूप, परमाणु केन्द्र के रूप में केन्द्रक को मानकर, हम उसकी रचना के प्रति आभास प्राप्त कर सकते हैं, जिसके प्रति मैं पहले ही संकेत कर चुका हूं—

परमाणु केन्द्रों के आसपास
अपने गोल-पथ पर
घूमते हैं अंगारे
घूमते हैं एलक्ट्रान
निज रश्मि-पथ पर।
एलक्ट्रान—रश्मियों में बंधे हुये

१—कामायनी, प्रसाद, चिंता, पृ० २०.

अणुओं का पुंजीभूत
एक महाभूत में !¹

इसकी एक-एक पंक्ति अणु रचना के प्रति एक सफल निर्देश है। केन्द्रक के आसपास एलक्ट्रान, अपने वृत्त में बँधे हुए (निज रश्मि-पथ पर- जो नितांत एक नयी अभिव्यक्ति है जो वृत्त की व्यंजना करती है) परिक्रमा-शील है। सौर मंडल से अणु की समानता इस दार्शनिक तथ्य का प्रतिरूप है कि जो पिंड में है, वही ब्रह्मांड में है अर्थात् पिंड ही ब्रह्मांड है ! बीसवीं शताब्दि के प्रथम चरण तक परमाणु के रहस्योद्‌घाटन में डाल्टन, बोहर आदि वैज्ञानिकों ने यथोचित योगदान दिया था। परमाणु की प्रकृति अत्यन्त गतिशील है। प्रत्येक परमाणु दूसरे के प्रति आकर्षित ही नहीं होता है, वरन् उस आकर्षण में सृष्टिक्रम की न जाने कितनी सम्भावनाएं समाई रहती हैं। इस सृष्टि-क्रम में, परमाणु का निष्क्रिय होना मानो प्रकृति की गतिशीलता में व्यवधान है। अतः प्रो० आइंस्टीन के अनुसार परमाणुओं में वेग (Velocity) कम्पन (Viberatin) और उल्लास (Veracty) तीनों की अन्विति प्राप्त होती है। तीनों की सम्यक् समरसता में ही सृष्टि का रहस्य छिपा हुआ है। इस सत्य का एक अत्यन्त सुन्दर रूप प्रसाद की कामायनी में प्राप्त होता है जो मुझे बहुत ही आश्चर्य में डाल देता है, क्योंकि प्रसाद ने 'परमाणु' की भावना का जो उपर्युक्त रूप रखा है, वह उनके समय के बाद की प्रस्थापना है ! वेग, कम्पन और उल्लास—ये तीन तत्व इन पंक्तियों में व्यंजित है—

अणुओं को है विश्राम कहाँ,
यह कृतिमय वेग भरा कितना।
अविराम नाचता कम्पन है
उल्लास सजीव हुआ कितना॥²

अणु के इस रूप में सृजन की गरिमा भरी हुई है, और यह गरिमा पंत की इन पंक्तियों में दर्शनीय है—

१—चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ० ८५. 'मुझे नहीं मालूम'

२—कामायनी, काम सर्ग, पृ० ६५

महिमा के विशद् जलधि में
हैं छोटे छोटे से कण ।
अणु से विकसित जग जीवन
लघु लघु का गुरुतम साधन ॥[१]

अणु है तो लघु या सूक्ष्म, पर इन्हीं लघु तत्वों के संयोग से गुरुतम सृष्टि कार्य भी सम्पन्न होता है । इसी कारण, प्रसाद ने परमाणुओं को चेतन युक्त कहा है, जिनके बिखरने और विलीन होने में सृष्टि का विकास और विलय निहित रहता है ।

चेतन परमाणु अनन्त बिखर
बनते विलीन होते क्षण भर ।[२]

परमाणुओं की उपर्युक्त प्रवृत्ति के प्रकाश में, जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, 'पिंड में ब्रह्मांड' की उक्ति सार्थक होती है । आधुनिक वैज्ञानिक-दर्शन के अनुसार पिंड और ब्रह्मांड को माइक्रोकाज्म और मैक्रोकाज्म (Microcasm and Macrocasm) की संज्ञा दी गई है । इन दोनों का अन्योन्य सम्बन्ध विकासवाद का एक तथ्य है । यह वैज्ञानिक सत्य इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि दो या अधिक विपरीत तत्त्वों का एकीकरण ही 'सत्य' का रूप है ।[३] इसी तथ्य की एक सफल अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार प्रस्तुत की गई है—

तुम ही अखिल विश्व में
या यह अखिल विश्व है तुम में
अथवा अखिल विश्व तुम एक
यद्यपि देख रहा हूं
तुममें भेद अनेक ![४]

१—गुंजन, पंत, पृ० २८

२—कामायनी, पृ० ८२

३—हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास, वीरेन्द्र सिंह, पृ० १३६.

४—परिमल, निराला, 'कण', पृ० १७१.

परमाणु की इस 'विराटता' का एक अन्य पक्ष भी है जो उपर्युक्त अंतिम काव्य पंक्ति में व्यंजित होता है। अनेक भेदों से युक्त परमाणु का यह रूप उसकी विराटता का संकेत तो है ही, इसके साथ ही साथ उसके फिशन या 'विघटन' से उद्भूत शक्ति या ऊर्जा का स्वतन्त्र होना है। एलक्ट्रान के आक्रमण से परमाणु एक ऐसी शक्ति का उद्भव करता है जो "फिशन" की क्रिया के द्वारा, अपनी गुप्त शक्ति को बहिर्गत करता है ! यह शक्ति–आणविक शक्ति लोकहित के लिए प्रयुक्त हो सकती है, परन्तु कवि के मन में आशंका है कि इसका प्रयोग 'मानवता' शुभ कार्य के लिए शायद ही कर सके ! अणु का यह रूप मानों ब्रह्म का रूप है जिसने अपना 'नाम' बदल लिया हो।

हो गया है फिशन अणु का
परम ब्रह्म अनादि मनु का।
ब्रह्म ने भी खूब बदला नाम
लोक हित में पर न आया काम। [१]

अणु का यह फिशन जो अणु-विस्फोट का पर्याय है, जिसके आधार पर अणु-बम की रचना सम्भव हो सकी। आधुनिक विश्व के लिए यह एक चुनौती है कि वह आणविक शक्ति का कैसा उपयोग करता है ? यहां पर आधुनिक कवि का दृष्टिकोण सामान्यत: निषेधात्मक है। डा० धर्मवीर भारती ने 'अंधा-युग' नाट्य-काव्य में, अपरोक्ष रूप से जो भविष्य का संकेत किया है, वह बम-विस्फोट का दूषित प्रभाव है जिसके प्रति स्वयं वैज्ञानिकों की यही सम्भावना है कि मानव-जाति की भावी पीढ़ियां जिससे विकलांग, बौनी और कुंठाग्रस्त होंगीं। कवि ने मानो अणु बम को ब्रह्मास्त्र के रूप में कल्पित कर, उसके प्रभाव का जो वर्णन किया है, वह मेरे उपर्युक्त विवेचना की पुष्टि करता है—

ज्ञात क्या तुम्हें है, परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का
यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नरपशु !
तो आगे आनेवाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय बनस्पति नहीं होगी

१—धूप के धान गिरिजा कुमार माथुर पृ० ७६

शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुंठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी ।[1]

अणु बम के विस्फोटों से उत्पन्न प्रभाव का एक अन्य चित्र है—

हुआ यदि विस्फोटों से त्राण
जायेंगे तो घुल घुल कर प्राण ।
विविध कीटाणु बनेंगे बाण

× × ×

करेंगे शवि-साधन से शाक्त ।
वायुमंडल है विषय विषाक्त ।। [2]

अणु बम के निर्माण में यूरेनियम धातु का प्रयोग किया जाता है जो शक्ति या ऊर्जा के प्रादुर्भाव का माध्यम है । यह धातु मिट्टी से प्राप्त की जाती है जो संसार के कुछ देशों में प्राप्य है ! इसे मिश्रण से अलग करने की एक वैज्ञानिक रासायनिक क्रिया है जो यूरेनियम तत्व को प्रयोगशील बनाती है । यह यूरेनियम की शक्ति ही मिट्टी की 'सूक्ष्म' शक्ति है जो संहार और सृजन, दोनों में प्रयुक्त की जा सकती है ! कवि ने इसे भी संहारक रूप में चित्रित किया है ।

मिट्टी की सूक्ष्म शक्ति का लेकर अग्नि बीज,
वह पृथ्वी को अणु धूम बनाना चाह रहा । [3]

उपर्युक्त अणु भावना के रूप से यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान ने अणु या परमाणु रचना के द्वारा विश्व के रहस्य का उद्‌घाटन किया है, और हमें यह सोचने को विवश किया है कि परमाणु कोई भौतिक तत्व मात्र नहीं है । जिस प्रकार "पदार्थ" को बटरन्ड रसल ने 'भौतिक' (material) नहीं माना है, [4] उसी प्रकार परमाणुओं के योग से बने

१—अंधायुग, डा० धर्मवीर भारती, पृ० ९३.

२—विश्ववेदना, पृ० ३७.

३—शिला पंख चमकीले, गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ११

४—फिलासफिकल एसपेक्ट्स आफ माडर्न सांइस, सी० ई० एम जोड पृ० ८७

पदार्थ को हम नितांत भौतिक नहीं कह सकते हैं। पदार्थ एक ऐसा तत्व है जिसके प्रति 'मन' आकर्षित तो होता है, पर 'उस' तक पूर्ण रूप से पहुंच नहीं पाता है! इस दृष्टि से, अणु एक रहस्यमय अवधारणा है और आधुनिक कवि उसकी रहस्यमता के प्रति सजग है! आज्ञेय नें अणु को एक 'असीम' रूप में कल्पित किया है और उस असीम शक्ति से, जिससे कि वह प्रेरित होता है, उससे एक तादात्म्य का, एक विलय का रहस्यात्मक संकेत किया है! रहस्यवाद की कल्पना, द्वैत में अद्वैत की रसात्मक कल्पना है जो हिंदी काव्य के आदिकाल से किसी ने किसी रूप में विकसित होती रही है! आज्ञेय नें भी 'अद्वैत' का अनुभव किया है, पर नितांत दूसरे धरातल परः और वह भी वैज्ञानिक धरातल पर! देखिये।

एक असीम आणु,
उस असीम शक्ति को जो उसे प्रेरित करती है
अपने भीतर समा लेना चाहता है
उसकी रहस्यमयता का पर्दा खोलकर
उसमें मिल जाना चाहता है—
यही मेरा रहस्यवाद है! [1]

भावबोध (Sensibility) का यह धरातल युग-सापेक्ष है; और कवि जो समसामयिकता और परम्परा को 'आधुनिकता' के तत्व मानता है, इन दोनों तत्वों का सुन्दर समाहार आज्ञेय की उपर्युक्त पंक्तियों में द्रष्टव्य है! विज्ञान के ऐसे चिंतन पक्ष (दर्शन) का विश्लेषण तथा विवेचन यथा स्थान किया जायेगा!

१ इत्यलम्, अज्ञेय रहस्यवाद पृ० ६३

५ | कुछ अन्य क्षेत्र और काव्यात्मक अभिव्यक्ति

प्रवेश—पिछले प्रकरणों में उन वैज्ञानिक क्षेत्रों का विवेचन एवं मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया जिनका विशेष रूप अथवा अधिक समाहार आधुनिक काव्य–बोध में प्राप्त होता है। काव्य बोध और वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के आपसी सम्बन्धों से अभी तक यह तथ्य समक्ष आया है कि 'आधुनिकता' का परिवेश वैज्ञानिक-विचारों तथा प्रस्थापनाओं से युक्त एक काव्य-दृष्टि है; और इस काव्य दृष्टि का मूल्य, कम से कम, कवि की दृष्टि से, उसकी ग्रहणशीलता पर आश्रित है। 'ज्ञान' के विविध क्षेत्रों का मंथन, और उसे:संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करना, आज के कवि के लिये एक सबसे बड़ी चुनौती है। अभी तक मैंनें विज्ञान के अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों के संवेदनात्मक रूप का आख्यान प्रस्तुत किया है, फिर भी, कुछ क्षेत्र अब भी शेष रह जाते हैं जिनका काव्यत्मक रूप, किसी न किसी आयाम को स्पर्श करता है! यह दूसरी बात है कि यह 'स्पर्श' पिछले 'स्पर्शों' की अपेक्षा कम हो, पर उन्हें गौण कह कर छोड़ा नहीं जा सकता है। मात्रा की दृष्टि से कदाचित वे गौण क्षेत्र हो सकते हैं, पर ज्ञान की दृष्टि से, और काव्यात्मक संवेदना की दृष्टि से उनका महत्व किसी प्रकार भी कम नहीं है! ऐसे क्षेत्र गणित, जीवन, जीव–शास्त्र आदि से सम्बंधित हैं जिनका विवेचन इस प्रकरण में अपेक्षित है।

जीव शास्त्रीय अभिव्यक्ति—विकासवाद के अन्तर्गत जीवशास्त्र से सम्बंधित उस आयाम का संकेत किया गया जो मानव तथा अन्य जीव धारियों को एक विकास-क्रम में समक्ष रखता है। इसी के अन्तर्गत उन विशिष्ट क्रियाओं तथा घटनाओं का संकेत आपेक्षित है जो जीवों तथा वनस्पतियों की क्रियाओं तथा व्यवहारों से सम्बंधित है। इन 'क्रियाओं' के

द्वारा कवियों ने, जहां एक ओर वैज्ञानिक तथ्यों का सहारा लिया है वही दूसरी ओर, उनके द्वारा काव्यात्मक अभिव्यक्ति के एक नये रूप को सामने रखा है ! एक अन्य तथ्य, जो इन उदाहरणों में दृष्टव्य है, वह है एक 'सामान्य ज्ञान' की सीधी अभिव्यक्ति ।

'जीवन' का जीवशास्त्रीय आधार क्या है ? यह एक समस्या है, पर विज्ञान ने 'जीने की क्रिया को एक यांत्रिक क्रिया के रूप में देखा है। हममें जो प्राणशक्ति का संचार है, वह भी रक्त एवं श्वास की ही शक्ति एवं क्रिया है जिसके बगैर 'जीवन' की कल्पना असम्भव है ! रक्त-परिक्रमा में स्वस्थरक्त का महत्वपूर्ण स्थान है जिसमें लाल रक्त कणों की प्रधानता होती है जिसके द्वारा समस्त अंगीय अवयवों में ओषजन का सम्यक संचार एवं वितरण होता है—इसी तथ्य को एक पंक्ति में आपरोक्ष रूप से रखा गया है—

स्फीत शिरायें स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार—[1]

जीवन का दूसरा आयाम या तत्व है, श्वास क्रिया ! श्वास क्रिया में दो क्रियायें होती हैं, पहली बाहर की वायु को फेफड़ों के द्वारा अंदर खींचना और फिर, विमोचन क्रिया से वायु को बाहर फेकना जिसमें कार्बन डाइआक्साइड की प्रधानता होती है !

श्वास की हैं दो क्रियायें
खीचना, फिर छोड़ देना
कब भला सम्भव हमें इस,
अनुक्रम को तोड़ देना ![2]

एक योगी श्वास निरोधन क्रिया के द्वारा 'प्राणायाम' की स्थिति में आ जाता है। इस दशा में 'उसे' ओषजन् की न्यूनता का अनुभव नहीं होता है, पर 'वह' अपने अंगों में कार्बन डाइआक्साइड के धरातल पर लयात्मक परिवर्त्तन लाने में समर्थ होता है।[3] इस दृष्टि से, जे० बी० एस० हाल्डेन

१—कामायनी, चिंता सर्ग, पृ० ४.

२—इत्यलम्, 'नाम तेरा', पृ० ११९. अज्ञेय

३—द यूनिटी एंड डाइवर्सिटी आफ लाइफ, हाल्डेन पृ० ६४

का मत है कि जीवन के लिये कार्बन डाइआक्साइड एक तत्व है जिसके बगैर हम रह नहीं सकते हैं।[1]

इसके अतिरिक्त, इस वर्ग (जीव) के अन्तर्गत कुछ ऐसे उदाहरण भी प्राप्त होते हैं जिसमें जीवों के कुछ विशिष्ट आदतों तथा क्रियाओं का संकेत मिलता है जो उनकी किसी प्रवृत्ति का दिग्दर्शन करते हैं! जीवों की क्रियायें तथा उनके व्यापार कभी कभी बड़े आश्चर्यजनक होते हैं, परन्तु उन कार्यों के पीछे कोई न कोई अर्थ या तात्पर्य अवश्य छिपा रहता है। हर क्रिया के पीछे कोई न कारण रहता है और जीव जगत के लिये यह एक तथ्य है। मेढक, जो जल और थल दोनों का जीव है (वैज्ञानिक शब्दावली में ऐसे जीवों के वर्ग को 'एमफीबीयन' कहते हैं), वर्षा में उसकी शब्द-ध्वनि किसी अर्थ के निमित्त होती है। उसकी 'टर्राहट' एक प्रकार से, यौनिक क्रिया का निमंत्रण है जिसमें "प्रेम की पुकार" छिपी रहती है। यह एक जीवशास्त्रीय तथ्य है, जिसके प्रति शोध भी हो चुका है। तथ्य में यह निरीक्षण एवं परीक्षण का विषय है। पंक्तियां इस प्रकार हैं—

मेढ़क की टर्राहट
कर्कश हो कितनी ही
उसमें छुपी है
मधु कोमल प्यार की पुकार![2]
(साक्षी है, जीव शास्त्र)

यह तो एक प्रकार की यौनगत प्रवृत्ति है, पर चींटी जैसे लघु जीव की कार्य कुशलता, कार्य-विभाजन तथा श्रम-महत्त्व अवश्य ही आश्चर्य का विषय है, जो मानव नामधारी प्राणी के लिये स्पर्द्धा का विषय है। यहां पर हमें 'रानी चींटी' का अधिकार समस्त चींटी-समुदाय पर प्राप्त होता है। यह 'लघु जीव' श्रम जीवी है जो संग्रह ही करती है; वह किसी की अनुकम्पा पर जीवित न रहे, अपने श्रम पर, अपने साहस पर जीवित रहती है। इस

१—वही, पृ० ६४.
२—ओ अप्रस्तुत मन, भारत भूषण अग्रवाल 'कर्कश का आवरण', पृ० १४३

सम्पूर्ण प्रवृत्ति का निरीक्षण तथा उससे प्राप्त निष्कर्ष ही जीव शास्त्रियों के लिए एक आश्चर्य का विषय बनीं—

पिपालिका श्रम जीवी है,
केवल संग्रह करती जाती।
रानी चींटी के लिये निरत है
यह लम्बी काली पांती॥
सीखो इनसे सहकार्य, मनुज
गृह रचना, श्रम का बटवारा।
चींटी को संग्रह ही प्रिय है
कब दान दया उसको भाती॥[1]

इस प्रकार के अनेक आश्चर्यजनक उदाहरण जीव-जगत में प्राप्त होते हैं, पर काव्यात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से, कवियों ने इनका यदा कदा प्रयोग किया है, पर ऐसे प्रयोग मुझे कम ही मिले हैं। दूसरी ओर, वनस्पति जगत से सम्बंधित क्रियाओं का रूप भी सीमित है, परन्तु एक बात जो ध्यान देने योग्य है कि जीव जगत के समान, यह वनस्पति जगत भी प्राणवान् है, वह निर्जीव नहीं है। आचार्य जगदीशचन्द्र बसु और डा० साहानी आदि वनस्पति शास्त्रियों ने पेड़ पौधों को प्राण युक्त साबित किया है और उन्हें भी जीवों के समान क्रियाशील बनाया है। प्रयोगात्मक विज्ञान में पौधों की इस प्रवृत्ति को प्रमाणित किया गया है कि पौधे भी, प्रकाश की ओर अग्रसर होते हैं, और अंधेरे को वे नकारते हैं। इस तथ्य की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है—

देख रहा हूँ,
लम्बी खिड़की पर रखे पौधे
धूप की ओर बाहर आ रहे हैं झुके![2]

इस उदाहरण में संवेदनात्मक रूप की सर्वथा कमी है, और इसी कारण इन उदाहरणों में तथ्य निर्देशन तो अवश्य है, पर काव्यात्मक संवेदना का रूप मुखर नहीं हो सका है! दूसरी ओर डा० रामकुमार वर्मा ने एक

१—प्रतीक (१२) में प्रकाशित प्रभाकर माचवे की कविता, 'छत्ता' पृष्ठ ८२
२—नई कविता (२) वसंत द्वारा रघुवीर

वैज्ञानिक सामान्य तथ्य को अधिक संवेदनात्मक रूप में रखने का प्रयत्न किया है। वृक्ष या पौधा अपने मूल या जड़ों से जो 'रस' खींचता है, वह 'रस' 'पल्लव' की शिराओं में प्रवाहित होता है ! जड़ की महीन शिरायें पृथ्वी से जो भोज्य पदार्थ खींचती हैं, वह रस के रूप में समस्त पौधों या वृक्षों को जीवन प्रदान करती हैं।

पल्लव भले ही मूल से हो दूर वृंत में
किन्तु मूल का है रस उसकी शिराओं में।[1]

इधर वैज्ञानिकों ने प्रयोग के द्वारा इस तथ्य को भी सामने रख दिया है कि अनेक रीढ़धारी जीवों की तरह, लाल रक्त कण और 'हीमोग्लाबिन' कुछ मछलियों, कीड़ों एवं कुछ पौधों की जड़ों में भी प्राप्त हुआ है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि जड़ों का महत्त्व वृक्ष तथा पौधों के लिये अत्यधिक है ! इस प्रकार 'जीवन की एकता' का सर्वविदित सिद्धांत समस्त चेतना जगत पर लागू होता है और यह 'एकता', वर्गों के मध्य सहयोग, प्राणियों के व्यवहार क्रम तथा प्रजनन क्रिया की समानता पर आधारित है।[2] प्रत्यक्षत:, इन उदाहरणों के द्वारा उपर्युक्त 'एकता' का भाव दृष्टिगत होता है। जीवन का यही रहस्य है कि 'वह' एक ऐसी शर्त है जो संस्कार जनित है, और हम परम्परा तथा संस्कार को पूर्ण रूप से छोड़ नहीं सकते हैं, और इसी से, जीवन की शर्त को भी त्याग नहीं सकते हैं। दूसरे शब्दो में, अस्तित्व ही जीवन की शर्त है और कवि इस शर्त के प्रति सजग है—

और तुम चाहे परम्परा से बंधी
मेरी पत्नी न हो
पर एक ऐसी शर्त जरूर है
जो मुझे संस्कारों से प्राप्त हुई
कि मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता ![3]

१—एकलव्य, धारणा, पृ० १४१.

२—द यूनिटी एण्ड डाइवर्सिटी आफ लाइफ, पृ० ४१. जे०बी०एस० हाल्डेन।

३—सूर्य का स्वागत, 'ओ मेरी जिंदगी,' दुष्यंत कुमार, पृ० २१.

गणित संबंधी अभिव्यक्ति

विश्व रचना के संदर्भ में और उससे सम्बंधित सिद्धांतों के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि उनकी निष्पत्ति में तथा उनकी प्रामाणिकता में 'गणित' का सहारा लिया गया है। चाहे वह अंतरिक्ष यान की गति हो, चाहे वह ग्रहों का गति-मापन हो अथवा चाहे वह ज्यामीतिक कलन (Calculus) हो, सबमें 'गणित' का सहारा लिया जाता है। इसीसे, प्रो० आइंस्टीन ने सृष्टिकर्त्ता को 'गणितज्ञ' की (Mathematical Mind) संज्ञा दी है, इसके पीछे यही सत्य ज्ञात होता है कि चतुर्आयामिक विश्व एक 'सत्य' है जो "ईश्वर" की धारणा का पर्याय है।[1] सर जेम्स जीन्स के इस तथ्य निरूपण में गणित की ही प्रस्थापनाओं का एक कार्यान्वित रूप प्राप्त होता है। इस प्रकार अंकगणित, ज्यामीति, बीजगणित के द्वारा आज का गणितज्ञ, 'सत्य' के साक्षात्कार की ओर प्रयत्नशील है! इस प्रयत्नशीलता के प्रति आज का 'कवि' भी अपेक्षाकृत सचेत है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि आज का कवि 'गणितज्ञ' हो गया है, वह 'कवि' पहले है, इसके बाद और कुछ! परंतु कवि होने का मतलब यह भी नहीं है कि वह निरपेक्ष तत्त्व है, अस्तित्व के लिये सापेक्ष होना ही पड़ता है। जहां पर सापेक्षता है, वहां पर "सीमा" का प्रश्न अत्यंत आवश्यक है। दिक् एवं काल की विवेचना के अन्तर्गत 'सीमाबद्धता' के महत्त्व पर प्रकाश डाला जा चुका है (दे० विकासवाद अध्याय के अंदर) और उनके सापेक्ष होने पर बल दिया गया है। इस सिद्धांत प्रस्थापन में 'गणित' का आश्रय लिया गया है, परन्तु कवि ने इस प्रस्थापना को ज्यामीतिक आकारों के माध्यम से व्यंजित करने का प्रयत्न किया है। त्रिभुज, चतुर्भुज अथवा वृत का अस्तित्व रेखा-सापेक्ष है और ये सभी आकार सीमाबद्ध हैं। कवि का 'मन' इस तथ्य को समक्ष रखता है—

> **मैं नहीं हूं—**
> **यह त्रिभुज, यह चतुर्भुज, यह वृत……!!**
> **त्रिविध या विविध,**

१—फिलासिफकल एस्पेक्ट्स आफ मॉडर्न साइंस, सी० ई० एम० जोड पृ० ६३.

रेखा पराजित
ये एक भी आकार
सुन्दर, स्पष्ट
किन्तु सीमाबद्ध, स्वयमाबद्ध ![1]

परन्तु दूसरी ओर कवि का 'मन' ज्यामीति की रेखाओं और 'सेक्सन' के बीच में डोलता है, वह उससे बाहर जाने में असमर्थ है। कवि ने ज्यामीति के एक बिंब को लेकर, काल की सापेक्षता में, अपने अस्तित्व की परिधि का एक चित्र समक्ष रखा है जो मेरे विचार से आधुनिक बिंबों को एक संवेदनात्मक रूप में रखने में सफल हुआ है। डा० जगदीश गुप्त की एक सुन्दर कविता 'चेतना की पर्तें' में रेखा और 'सेक्शन' के बिंब को लेकर एक सुन्दर अभिव्यंजना प्रस्तुत की गई है—

जो चुका है बीत, बीतेगा अभी जो—
बीच में उसके बहुत पतली सतह है
ठीक ज्यामीति की बताई—
एक रेखा
एक सेक्शन
डोलता है उसी में मन !![2]

इन दोनों उदाहरणों में "सीमाबद्धता" के तत्त्व को ही विभिन्न संदर्भों मे समक्ष रखा गया है और गणित के 'सत्य' अस्तित्व को मान्यता प्रदान की गई है। एक आंग्ल कवि हेरियट मन रो (Harriet Monroe) ने अपनी एक कविता "द मैन आफ साइंस स्पीक्स" में गणित को एक ऐसे सत्य के रूप में माना है जो "अनंतता" के अवगाहन में सक्षम है :—

व्हाइल यू स्पेकुलेट इन वेन
मेकिंग लिटिल गाड्स, फारसूथ,
वी फैदम इनफिनिटीज—
मैथमिटिक्स इज द ट्रूथ ![3]

१—तीसरा सप्तक, प्रयाग नारायण त्रिपाठी की कविता, पृ० ५६.
२—नांव के पांव, जगदीश गुप्त, पृ० २७.
३—ए बुक आफ साइंस वर्स पृ० १७०

सृष्टि-रहस्य का एक अन्य बिंब भी गणित के द्वारा व्यंजित किया गया है और इस व्यंजना में कवि ने बिंदु और परिधि के सापेक्षिक महत्व को चरितार्थ किया है ! बिना बिंदु के परिधि (सृष्टि) की कल्पना नहीं की जा सकती है, उसी प्रकार, परिधि का अस्तित्व भी बिंदु सापेक्ष है। इस उदाहरण का व्यंजनार्थ अत्यंत व्यापक है क्योंकि एक वैज्ञानिक–सत्य के द्वारा दार्शनिक सत्य को सामने रखा गया है। यह हो सकता है कि परिधि (Circumference) सिमट कर केंद्र (Centre) में समाहित हो जाय, पर अंततोगत्वा, 'परिधि' का विस्तार अपेक्षित है क्योंकि यह उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है—

> **और यह भी तो नहीं हो पायेगा सम्भव,**
> **परिधि सिमटे औ' सिमटकर केन्द्र में**
> **सो जाय ![1]**

इन उदाहरणों से हटकर, एक उदाहरण बीजगणित के बिंबों से सम्बन्ध रखता है। मुक्तिबोध की कविता "ब्रह्मराक्षस" में 'ब्रह्म' के व्यापकत्व का गणित सापेक्ष "योजन" प्राप्त होता है। समीकरणों (Equations) का गणित, तुल्य भारिता पर आधारित है जिसमें दो पक्ष एक दूसरे के पूरक होते हैं, और इस "पूरकत्व" में समीकरण का अस्तित्व समाहित है। ये पक्ष तर्क एवं भाव सम्मत है जो कार्य-कारण योजना से संयोजित होते हैं। कवि ने इस सम्पूर्ण "गणित" को अपने भावजगत के व्यंजनार्थ प्रयुक्त किया है और अभिव्यक्ति के नये आयाम की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है—

> **ये भाव संगत, तर्क संगत**
> **कार्य सामंजस्य योजित**
> **समीकरणों के गणित की सीढ़ियां**
> **हम छोड़ दें उसके लिए।**
> **उस भाव-तर्क व कार्य–सामंजस्य–योजन**
> **शोध में।[2]**

१—ओ, प्रस्तुत मन, भारत भूषण अग्रवाल। परिधि-और केन्द्र पृ०

२ चांद का मुंह टेढ़ा है मुक्तिबोध पृ० १४

अस्तु, गणित सम्बन्धी इन उदाहरणों में 'शोध' का महत्व तथा उससे उद्भूत अनेकानेक प्रस्थापनाओं के बारे में सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि गणित का विज्ञान 'तर्काश्रित' है और इसके द्वारा हम किसी भी 'सत्य' (fact) को प्रस्थापना के द्वारा विश्वसनीय बनाते हैं। दूसरी ओर, ऐसे भी गणित सम्बन्धी 'सत्य' हैं। जो 'अनुभव' के अन्तर्गत पूर्ण रूप से नहीं आते हैं।[१] दिक्, काल, परमाणु की प्रस्थापनाएँ केवल मात्र अनुभव पर ही प्रस्थापित नहीं की गई हैं। उनके पीछे चिंतन की तार्किक-विधि ही प्राप्त होती है। इस प्रकार ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र चिंतन क्षेत्र में प्रविष्ट होते ही 'दर्शन' के 'महाज्ञान' में विलीन हो जाता है।

१—लाजिक एण्ड नॉलज, बटरन्ड रसल, पृ० १३८

६ वैज्ञानिक-दर्शन

प्रवेश—पिछले अध्यायों में कुछ महत्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं तथा सिद्धान्तों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के स्वरूप तथा प्रकृति का विश्लेषण उपस्थित किया गया है और उसी विश्लेषण के अन्तर्गत यदा कदा वैज्ञानिक चिंतन (दर्शन) की ओर संकेत किया जा चुका है। इस अध्याय के अन्तर्गत हम व्यवस्थित रूप से वैज्ञानिक चिंतन के उन आयामों का स्पर्श करेंगे जिसने मानवीय क्रियाओं, विचारों तथा परम्परागत दार्शनिक चिंतन के क्षेत्रों को प्रभावित एवं संशोधित किया है। आधुनिक चिंतन को पूर्ण रूप से हृदयगम करने के लिये यह आवश्यक है कि हम वैज्ञानिक चिंतन के प्रकाश में आधुनिक चिंतन को समझने एवं परखने का प्रयत्न करें; केवलमात्र यह मानकर चलना कि विज्ञान का क्षेत्र, चिंतन का क्षेत्र नहीं है, सत्य में, विज्ञान के महत्व को कम ही करना नहीं है वरन ज्ञान के क्षेत्रों की सापेक्षता पर एक प्रश्न चिन्ह लगाना है! पूरे प्रबन्ध में और विशेषकर प्रथम अध्याय में मैंने अपनी इस प्रस्थापना को समक्ष रखा है। आज का युग, विचारों का युग है और विज्ञान ने जितनी अधिक मात्रा में, विचारों में क्रांति उपस्थित की है, कदाचित वैसी क्रांति "दर्शन" के क्षेत्र में ही हो सकी है। आज की वैचारिक क्राति सक्रामक (chronic) और शीघ्रगामी हो गई है[1] और अपरोक्ष रूप से, इसका कारण भी वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति है। अतः आज के विज्ञान मे मानव के सामने दो आयाम खोले हैं जिनका अन्योन्य सम्बन्ध है—एक तकनीकी प्रगति और दूसरी वैचारिक क्रांति। इन दोनों क्षेत्रों के द्वारा 'विज्ञान' जहां एक ओर 'शक्ति' का आधार है तो दूसरी ओर वह चिंतन तथा विचारों का गतिशील क्षेत्र है! आज के युग की सबसे बड़ी मांग यही है कि हम "सत्य" के उस स्वरूप का हृदयंगम कर सकें जो दर्शन और विज्ञान् के

१—साइन्स एण्ड लिटरेचर ए० हक्सले, पृ० ३६

अन्योन्य सम्पर्क से सम्भव हो सका है अथवा हुआ है। पंत जी ने इसी तथ्य को अपनी एक कविता 'भूत-दर्शन' में प्रत्यक्ष रखा है जिसका संकेत प्रथम अध्याय के अन्तर्गत किया गया है। पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

दर्शन युग का अन्त, अन्त विज्ञानों का संघर्षण
अब दर्शन-विज्ञान सत्य का करता नव्य निरूपण।[1]

विषयीगत दृष्टि का स्वरूप (Subjective) दार्शनिक क्षेत्र में विश्व के प्रति सामान्यत: दो दृष्टियों का संघर्ष रहा है, एक विषयगत दृष्टि-कोण जो वस्तु जगत (भौतिक जगत) को ही एकमात्र सत्य मानता है। यांत्रिक विश्व की कल्पना इसी दृष्टि का फल है। दूसरे शब्दों में, भौतिकवादी दर्शन इस तथ्य को लेकर अपने चिंतन का विकास कर सका। यहां पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विज्ञान की प्रगति ने भी इसी दृष्टिकोण का समर्थन किया है, पर बीसवीं शताब्दि में आकर अनेक वैज्ञानिक चिंतकों ने केवलमात्र इसी दृष्टिकोण को 'सत्य' नहीं माना है, पर उन्होंने विश्व तथा प्रकृति को अधिक गहराई से देखने का प्रयत्न किया और वे इस सीमित परिधि तथा दृष्टि का त्याग कर सकें। यांत्रिक दृष्टिकोण के प्रति प्रसिद्ध वैज्ञानिक चिंतक एडिंगटन का मत है—"प्रत्येक वस्तु के यांत्रिक विवेचन का त्याग, निष्क्रिय उपपत्तियों को समाप्त करने में समर्थ हो सका और क्रमश: अभिज्ञानपरक उपपत्तियों (Epistemological hypothesis) को स्थान दे सका।"[2] पंत जी ने भौतिकवाद को जो एक मात्र 'मानव' का अंतर दर्पण" कहा है वह वैज्ञानिक प्रगति के प्रति एक प्रश्न चिन्ह के समान है। पंत जी की ग्राम्य तथा युगवाणी कृतियां प्रगतिवादी चिंतन से अपेक्षा-कृत अधिक प्रभावित ज्ञात होती हैं, पर उनकी इस प्रवृत्ति का सम्यक् विकास हम उनकी आगे की रचनाओं में प्राप्त नहीं करते हैं। इसी तथ्य को लेकर कवि की एक वैयक्तिक प्रतिक्रिया व्यजित होती है—

करता भौतिकवाद
वस्तुजग का तत्वान्वेषण।

१—युगवाणी, पंतजी, पृ० ३९.
२—द फिलासफी आफ फिजिकल साइन्स, सर आर्थर एडिंगटन, पृ० ४३ ४५

भौतिक भव ही एकमात्र
मानव का अंतर-दर्पण ![1]

इस प्रतिक्रिया के अंतराल में एक दार्शनिक तत्व का प्रतिरूप मिलता है, परन्तु आज का चिंतन विषयीगत होता जा रहा है; और विज्ञान ने इस चिंतन को अपनी ही तरह से मान्यता प्रदान की है। मध्यकालीन विज्ञान और उनके चिंतकों ने विश्व तथा प्रकृति को विषयगत (Objective) ही माना था, पर आधुनिक युग के साथ, इस दृष्टिकोण में अंतर होता गया। मुख्यत: डा० आइस्टीन के सापेक्षवादी सिद्धांत और हायल तथा मैक्सवेल के सिद्धांतों ने वैज्ञानिक चिंतन में विषयीगत दृष्टिकोण को प्रश्रय दिया। हिंदू दर्शन का मुख्य स्वर भी विषयीगत है तथा पाश्चात्य दार्शनिक डेकार्ट (Descrates) ने भी चेतना के प्रकारों (modes) को "अपनी" ही सापेक्षता में 'सत्य' माना है। दिक्, काल, पदार्थ और अन्य नियमों की अवधारणा मूलत: सापेक्षिक एवं अभ्यांतरिक (विषयीगत) है।[2] आधुनिक "पदार्थ" की धारणा भी भौतिक न होकर, अपने सही रूप में तात्विक होती जा रही है। बटरन्ड रसल ने इस मत को समक्ष रखा है जिसकी ओर मैं प्रथम ही संकेत कर चुका हूं। (दे० अध्याय ४) दर्शन और विज्ञान के इस संधिस्थल पर पहुंच कर, यह मान्यता सदा सत्य ज्ञात होती है कि दर्शन और विज्ञान का अन्तर अंततोगत्वा एक निर्मूल अंतर है[3] और "चिंतन" की समन्वयकारी एवं सापेक्षवादी प्रवृत्ति के सर्वथा प्रतिकूल है। आधुनिक चिंतन–प्रक्रिया में, आधुनिक कवि भी इस मंथन को कैसे अस्वीकार कर सकता है ? इसी चिंतन का एक भावात्मक पक्ष हमें 'अज्ञेय' की इन पंक्तियों में प्राप्त होता है—

मैं हूं ये सब, ये सब मुझमें जीवित—
मेरे कारण अवगत—
मेरे नेत्र में अस्तित्व प्राप्त ![4]

इन पंक्तियों में अस्तित्व और "मैं" की चेतनावस्था का सापेक्षिक रूप

१—युगवाणी, पंत, पृ० ३९.
२—साइन्स एण्ड द मार्डन वर्ल्ड, ए० एन० ह्वाइटहेड, पृ० १४१.
३—द साइन्टिफिक एडवेंचर, हर्बर्ट डिन्जिल, पृ० ११३-११४.
४ इत्यलम अज्ञेय पृ० १६४

है जो अन्योन्याश्रित हैं। शैव-दर्शन की मूल प्रस्थापना भी इसी सापेक्षिकता एवं अन्योन्याश्रिता को लेकर ही चलती है। "कामायनी" महाकाव्य की भावधारा का समस्त आधार शैव-दर्शन पर आश्रित है, यह दूसरी बात है कि कवि प्रसाद ने अन्य दार्शनिक "वादों" तथा विचारों को उसमें समन्वित किया है जो कवि की चिंतन-प्रक्रिया का एक काव्यात्मक रूप है! मैं इस मत को सर्वथा मानने में असमर्थ रहा हूं कि काव्य तथा विज्ञान का कोई भी सम्बन्ध दर्शन से नहीं है। कवि भी (जहां तक आधुनिकता का प्रश्न है) एक चिंतनशील प्राणी है और युग की चिंतन भूमि से वह अपने को अलग नहीं रख सकता है। प्रसाद ने युग की चिंतन भूमि (वैज्ञानिक) को 'कामायानी' में स्पर्श किया था। उन्होंने आध्यांतरिक दृष्टिकोण का इस प्रकार परिचय दिया—

मैं की मेरी चेतनता
सबको ही स्पर्श किये सी।[1]

इस दशा एवं परिस्थिति से कुछ प्रतिकूल वह भी दशा है जो अत्यन्त व्यक्तिवादिता के कारण केवल बौद्धिक यंत्रवादिता को प्रश्रय देती रही है। भौतिकवादी चिंतन, जिसे हम वैज्ञानिक प्रगति से सम्बन्धित करते हैं, उसका भी एक रूप आज की कविता में मुक्तिबोध के द्वारा अभिव्यक्ति हुआ है जो आज की सम्पूर्ण संवेदना पर एक प्रश्न चिन्ह भी है और साथ ही वह एक 'सत्य' भी है—

वैसा मैं बुद्धिमान
अविरत
यंत्रबद्ध कारणों से सत्य हूं।[2]

सत्य में, यह दशा वैज्ञानिक चिंतन पर एक प्रश्न चिन्ह ही है, पर जैसा कहा गया कि यह चिंतन सीमित भी है और वैज्ञानिक-दर्शन की वर्तमान अन्विति के प्रतिकूल भी है। विषयीगत दृष्टिकोण का अर्थ नितात व्यक्तिवादिता नहीं है, वह तो व्यक्तिगत दृष्टि है जो समस्त चिंतन-प्रक्रिया से उद्भूत एक युगीन दृष्टि भी है और व्यक्ति का युगीन आयाम भी। इसी

१—कामायनी, प्रसाद, आनन्द सर्ग, पृ० २८९.
२—चाँद का मुंह टेढ़ा है द्वारा मुक्तिबोध पृ० ८५.

सदभ मे सौन्दर्यानुभूति का प्रश्न भी उठता है जो व्यक्तिगत अनुभूति मानी गई है। इस तत्व का विवेचन प्रथम प्रकरण म किया जा चुका है और सौंदर्य बोध के वैयक्तिक स्वरूप और उसके प्रसार पर प्रथम ही विचार किया जा चुका है।

विषयीगत तथा वस्तुगत दृष्टिकोण का संघर्ष वैज्ञानिक चिंतन में भी रहा है और यही संघर्ष दर्शन के क्षेत्र में भी रहा है। परन्तु समस्त स्थिति का विश्लेषण इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि 'पूर्णता' एक में समाहित प्राप्त नहीं होती है, क्योंकि दोनों का सापेक्षिक महत्व किसी भी 'ज्ञान' के लिए आवश्यक है । वैज्ञानिक तथा दार्शनिक दोनों का ध्येय अनेकता में 'एकता' का अनुसंधान एवं उसकी अनुभूति करना है। मेरा तात्पर्य 'पूर्णता' से किसी ऐसी दशा से नहीं है जो दार्शनिक शब्दावली में ब्रह्म, मोक्ष अथवा कैवल्य में माना गया है। इससे मेरा तात्पर्य उस 'समवाय' दृष्टि से है जो दो या दो से अधिक विपरीत प्रस्थापनाओं अथवा प्रत्ययों के बीच "सम्यक दृष्टि" में मानी जाती है। चिंतन के सभी आयाम इन दो दृष्टियों के समन्वय पर आधारित माने जा सकते हैं। जहां तक वैज्ञानिक-दर्शन का प्रश्न है, वह सापेक्षिक तथ्य एवं समन्वित तथ्य को लेकर ही नव चिंतन की ओर अग्रसर होता है। इस 'प्रत्यय' को कुछ दार्शनिक रूप देते हुए कवि ने उसे भावात्मक एवं काव्यात्मक रूप देने का प्रयत्न किया है।

शून्य पटल पर रूप रहित के रूप सृजन में
पाता हूँ प्रतिबार कुछ नया सा चिंतन में।[1]

चिंतन पक्ष अभ्यांतरिक एवं वस्तुगत क्षेत्रों से उद्भूत एक अवधारणात्मक प्रक्रिया है और वैज्ञानिक दर्शन भी इस तथ्य पर आश्रित एक अवधारणात्मक प्रक्रिया मानी जा सकती है। इसी कारण वैज्ञानिक-दर्शन में बौद्धिक जागरूकता प्राप्त होती है और इसीसे, यह बौद्धिकता तर्कजनित होती है। जब हम विज्ञान को ऐतिहासिक परिवेश में रखकर देखते हैं, तब यह स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन विज्ञान में वस्तुगत यथार्थ के आधार पर बौद्धिकता का विकास किया और बीसवीं शताब्दी में आकर यह बौद्धिकता तर्क तथा

१—नकुल, सियाराम शरण गुप्त, पृ० ४६.

अभ्यांतरिक दृष्टिकोणों से कहीं अधिक विकसित हो सकी। आइंस्टीन के सापेक्षवादी सिद्धांत ने अभ्यांतरिक दृष्टिकोण को वैज्ञानिक चिंतन में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है[1]; और अप्रत्यक्ष रूप से, बौद्धिकता का सम्बन्ध, जहाँ तक वैज्ञानिक दर्शन का प्रश्न है, वह भी अभ्यांतरिक दृष्टिकोण का एक विकसित रूप है। इस तर्क तथा बौद्धिकता के अतिरंजित रूप का आधुनिक समाज तथा मानवीय क्रियाओं में विकास होता जा रहा है और आज का कवि कम से कम, इस दशा के प्रति सजग अवश्य है और उसकी यह सजगता एक प्रश्न चिन्ह के रूप में उसके सामने है। सर्जनात्मकता के क्षेत्र में भी यही स्थिति कभी कभी देखी जाती है। अज्ञेय के समक्ष कदाचित यही स्थिति है जो उन्होंने सर्जनात्मकता के क्षेत्र में अनुभव किया है:—

तर्क की सामर्थ्य हममें है,
इसी से भूल जाते
जानना हैं चाहते हम
पूछते हैं, छटपटाते।
बुद्धि ही इस मोहतम में
ज्योति अंतिम है हमारी
किन्तु क्या इसकी परिधि में
नियति को हम बांध पाते।[2]

अंतिम दो पंक्तियां एक प्रश्न भी हैं और एक समस्या भी है जो आधुनिक मानव की 'नियति' को क्रियाशील करती जा रही है। बुद्धिवादिता मानव की समन्वयात्मक प्रक्रिया है और 'ज्ञान' के विकास में वह सदैव से सहायक रही है। इस दृष्टि से भी बुद्धि, तर्क और अनुभव—ये तीनों क्रियायें, मूलत:, मानव के अभिज्ञानपरक एवं अवधारणापरक चिन्तन के तत्व माने जा सकते हैं और वैज्ञानिक दर्शन में ये तीनों तत्व सदैव से क्रियात्मक रहे हैं। "ज्ञान" को इस रूप में देखने से यह तथ्य समझ आता है कि आधुनिक काव्य (तथा अन्य साहित्यिक विधाओं में) तथा अन्य मानवीय क्रियायें 'ज्ञान' को, अपने परिवेश के अनुसार, प्रस्तुत करने का प्रयत्न करती हैं। साहित्य तथा कला

१—साइंस एण्ड द माडर्न वर्ल्ड, ह्वाइटहेड, पृ० १४१
२ [illegible] पृ० ११५

पर भी इस तत्व का न्यूनाधिक प्रभाव लक्षित होता है जैसा कि उपर्युक्त अव-तरण (अज्ञेय) से स्पष्ट है। ज्ञान के इस चिन्तन–पक्ष को लेकर ही हम 'दर्शन' के क्षेत्र में आते हैं और काव्य की भावभूमि में इस चिन्तन पक्ष का वही रूप अपेक्षित है जो सर्जनात्मक 'गरिमा' को हृदयंगम कर सके। प्रत्येक मानवीय ज्ञान सर्जनात्मकता के आधार को ग्रहण कर सकता है; और उसकी सर्जनात्मकता ज्ञान सापेक्ष ही होती है। इस प्रकार, ज्ञान का सर्जनात्मक रूप एक तथ्य है और काव्य सर्जनात्मक होने के कारण, इस तथ्य को किसी न किसी रूप में ग्रहण करता है। ज्ञान की पिपासा सदैव गतिशील रही है और यह गतिशीलता 'न जानने' (अज्ञान) के कारण होती है क्योंकि हमारा समस्त ज्ञान, 'न जानने' की आधारशिला पर विकसित होता है। टी० एस० इलि-यट ने अपनी एक कविता में 'ज्ञान' के इसी रूप को, जो सदैव से ज्ञान के विकास इतिहास का प्रेरक तत्व रहा है, इस प्रकार संकेत किया है:—

वहाँ पहुँचने के लिये जिससे तुम अनभिज्ञ हो
तुम्हें अज्ञान की राह से गुजरना होगा
और तुम जो नहीं जानते हो,
वही तुम्हारा एक मात्र ज्ञान है।[1]

मूल्यों (Values) का स्वरूप

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में कहा जा सकता है कि ज्ञान का अनेक क्षेत्रों में विकास मूल्यों की सृष्टि करता है जो नवीन ज्ञान और चिन्तन के प्रकाश में परिवर्तित होते रहते हैं। मूल्यों का संघर्ष उतना ही सत्य है जितना विचारों का संघर्ष। मेरे विचार से यह 'संघर्ष' प्रगति का सूचक है, परन्तु यह 'संघर्ष' केवल संघर्ष के लिये न होकर, एक तार्किक मानवीय अंतर्मंथन का विकास चिन्ह होना चाहिये। इस दृष्टि से वैज्ञानिक विकास से उद्भूत चिंतन ने हमारी अनेक प्राचीन मान्यताओं को एक नवीन अर्थ देने का प्रयत्न किया है अथवा उन मूल्यों को पूर्णतया खंडित किया है। इस विषय के प्रति यदा कदा संकेत किया गया है, पर यहां पर हम उन मानवीय मूल्यों का मूल्यां-कन व्यवस्थित रूप से करेंगे जिन्होंने हमारे मूल्य-चिंतन को नवीन संदर्भ में रखने का प्रयत्न किया है। आत्मा, सत्य या ईश्वर, रहस्यवाद, सौंदर्य तथा

१—वैशानर, अनु० डा० "[illegible]", पृ० [illegible]।

नैतिक मूल्यों के प्रति वैज्ञानिक चिंतन ने जो नवीन संदर्भ दिये हैं, उनके प्रति चाहे हम पूर्ण विश्वास न करें, पर इतना तो सत्य है कि उसका प्रभाव समाज तथा व्यक्ति से लेकर आध्यात्मिक जगत तक पड़ा है। आधुनिक कवि ने इस 'क्रांति' का अनुभव किया है और कवि पंत के अन्तरमंथन से उद्भूत ये पंक्तियां इसका प्रमाण है—

> **सक्रिय आज परिस्थितियों से रूद्ध चेतना,**
> **वहिर्दृष्टि विज्ञानों से नव बल संचयकर,**
> **बदल रहा जीवन यथार्थ, मानस पदार्थ अब**
> **नव मानव मूल्यों से कुसुमित सामाजिकता।**[1]

इन पंक्तियों में केवल एक बात खटकती है, वह 'वहिर्दृष्टि विज्ञानों' के प्रयोग में। कवि ने कदाचित् विज्ञान की प्रगति को वाह्य दृष्टि-सापेक्ष माना है जो विज्ञान के प्रति एक सीमित दृष्टिकोण है। सर आर्थर एडिंगटन ने अपनी पुस्तक "साइंस एंड द अनसीन वर्ल्ड" में वैज्ञानिक चिंतन को केवल इसी अर्थ के लिये नहीं माना है कि वह व्यक्ति की आध्यात्मिक सत्ताओं के प्रति अविश्वास को बढ़ाये केवल इसलिए कि उनमें स्पष्ट प्रमाणों का अभाव है।[2] काल (Time) सत्य है पर कोई भी इसे सुनिश्चित आकार के रूप में प्रमाणित नहीं कर सकता है। हमारे चिंतन में दिक्, काल ऊर्जा— ये सभी शब्द प्रतीकात्मक है और इन्हीं प्रतीकों के माध्यम से हम अपने विचारों, धारणाओं तथा मूल्यों को रूप प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से भी शब्द का सापेक्षिक महत्व रचनाकार और दार्शनिक के लिये समान है। रचनाकार 'शब्द' को संप्रेषण के लिये प्रयुक्त करता है, उसमें अर्थ को भरता है और दार्शनिक भी 'शब्द' का प्रयोग इसी अर्थ में करता है, परन्तु अधिक अवधारणात्मक रूप में। रचनाकार उसे संवेदना के स्तर पर भोगता है लेकिन भोगते दोनों हैं। अज्ञेय ने 'शब्द' को दो संदर्भों में भोगा है, एक 'सत्य' की अभिव्यक्ति के संदर्भ में उनका संघर्ष तथा दूसरा जिंदगी के इशारों के रूप में जो उन्हें रूप (फार्म) की अपेक्षा सार दे सकें। कवि के इस अंतसंघर्ष का विकास हम इन दो कविताओं में देख सकते हैं—एक "शब्द और

१—सौवर्ण, पंत, पृ० २७

२—साइंस एंड द अनसीन वर्ल्ड, पृ० २१—२२

सत्य" में तथा दूसरी, "इशारे जिन्दगी के"। इनमें से कुछ पंक्तियां निम्न-लिखित हैं—

शब्द और सत्य से—

> **ये दोनों जो**
>
> **सदा एक दूसरे से तन कर रहते हैं**
>
> **कब कैसे किस आलोक स्फुरण में**
>
> **इन्हें मिला दूं**
>
> **दोनों जो हैं बंधु, सखा, चिर सहचर मेरे।**[1]

यह तो सत्य की संवेदना, सर्जनात्मक धरातल पर मानी जा सकती है और अर्थ की संवेदना शब्द के धरातल पर; तथा ये दोनों संवेदनाएं सापेक्षिक हैं, हम उन्हें निरपेक्ष, रूप में ग्रहण नहीं कर सकते हैं। वैज्ञानिक 'सत्य' सदा सापेक्ष होते हैं और सर्जनात्मक धरातल पर सत्य का कोई न कोई रूप अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। विज्ञान की एक स्थापना या कथन उसके सत्य पर आधारित रहती है[2] जो सापेक्ष रूप से 'अर्थ' और 'सत्य' को संप्रेषित करती है। 'सत्य' का यह रूप केवल विज्ञान में ही मान्य नहीं हैं, पर अन्य मानवीय क्रियाओं पर इस धारणा का प्रभाव पड़ता जा रहा है। 'सत्य' के निरपेक्ष होने की धारणा परम्परागत रही है और वैज्ञानिक चिंतन ने 'सत्य' को जीवन एवं विश्व की सापेक्षता में देखने का प्रयत्न किया है। जोड महोदय ने आधुनिक विज्ञान और उससे उद्भूत चिंतन को एक नवीन संदर्भ में देखने का प्रयत्न किया है। एडिंगटन के विचारों की व्याख्या करते हुये उसने उनके इस विचार को रखा है कि 'सत्य' आध्यात्मिक है, सापेक्षिक तथा परिवर्तनशील है[3] 'सत्य' एक है, पर वह यह एक ग्रंथि है और इसी ग्रंथि को सुलझाने का उपक्रम सदैव से व्यक्ति करता रहा है, और विज्ञान ने भी इसे समझने का प्रयत्न किया है।

१—अरी ओ करूणा प्रभामयी, अज्ञेय, पृ० ३३

२—ए बुक आफ साइंस वर्स, सं० इस्टवुड' पृ० २६३,

३—फिलासिफकल एस्पेक्टस आफ मार्डन साइंस, सी० ई० एम० जोड २१

सत्य एक है
क्योंकि वह एक ग्रंथि है
जिसके सब सूत्र खो गए हैं।[1]

'सत्य' को पारिभाषित करना एक जटिल समस्या रही है, परन्तु यह समस्या ही अपने में एक 'मूल्य' है। मानवीय चिंतन ने विज्ञान का सहारा लेकर उसे अनेक "प्रतीकों" के द्वारा व्यक्त किया है। दूसरे शब्दों में ईश्वर, परमात्मा, परमशक्ति, 'शून्य', गणितज्ञ, दिक् और काल से आबद्ध चतुर्आयामिक सत्य,—ये कुछ शब्द-प्रतीक है जो 'सत्य' की अभिव्यक्ति हेतु वैज्ञानिक चिंतन में अनेक दार्शनिकों तथा चिंतकों के द्वारा प्रयुक्त होते रहे हैं। आधुनिक भावबोध का जहाँ तक प्रश्न है, उसके स्वरूप में 'सत्य' की इन अभिव्यक्तियों का न्यूनाधिक रूप प्राप्त होता है। मानव इतिहास ने इन 'प्रतीकों' का विशेष स्थान रहा है क्योंकि इनके द्वारा धर्म तथा दर्शन में एक ऐसी भाषा का निर्माण किया जो धारणात्मक चिंतन का आवश्यक तत्व हैं। अस्तित्ववादी दार्शनिक जेस्पर्स का मत है कि "चिंतन प्रतीकों के तत्व का अर्थगर्भित साक्षात्कार है"[2] जो मूलतः समस्त दार्शनिक प्रगति का मूलाधार है। यही तथ्य वैज्ञानिक चिंतन के बारे में भी सत्य है। दिक्, काल, ऊर्जा, चतुर्आयामिक विश्व, गुरुत्वाकर्षण शक्ति, सापेक्षवाद, अस्तित्ववाद, परमाणु आदि जितने भी वैज्ञानिक शब्द हैं, वे मूलतः शब्द-प्रतीक हैं जिनके द्वारा सत्य के सूत्रों का एक तार्किक स्वरूप मुखरित होता है। इन शब्द-प्रतीकों के धारणात्मक स्वरूप का सम्यक् विवेचन हम विगत अध्यायों में संदर्भानुसार कर चुके हैं जो इस तत्व की ओर संकेत करते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिक-दर्शन विश्व के रहस्य के प्रति सजग भी है और तात्विक क्षेत्र (Metaphysical) के प्रति उसका दृष्टिकोण एक तार्किक अनुभूति का विषय है। सम्पूर्ण रूप से कहा जा सकता है कि सत्य एक वृत्त के समान है जो रहस्यमय तो है, पर वह ऐसा रहस्य है जिसमें समस्त आकारों का पर्यवसान होता है अर्थात् यह वृत्त एक सापेक्ष तत्व है क्योंकि आकार को नकारने से उसके अस्तित्व के प्रति

१—इत्यलम्, अज्ञेय, "सत्य एक है"। पृ० ८७
२—ट्रूथ एण्ड सिम्बल कार्ल जेस्पर्स पृ० ५१

यही उसकी 'महानता' है। आज के बदलते हुये संदर्भों में यदि कवि कहता है कि—

और बारम्बार पाया
शून्य नीलाकाश
तुम ईश्वर नहीं हो
तुम हमारे प्रश्न का विस्तार,
पर उत्तर नहीं हो।[1]

तो इन पंक्तियों में 'ईश्वर' के प्रति उसकी आस्था एक नवीन 'प्रश्न' के रूप में आती है और वह परम्परागत यंत्रबद्ध धारणाओं को छोड़कर एक ऐसे "व्यंग्य" की अनुभूति करता है जो वैज्ञानिक दृष्टि का फल ही माना जा सकता है। मुक्तिबोध की एक सुन्दर कविता "मुझे नहीं मालूम" में युग की इसी दृष्टि को एक विडम्बना के रूप में रखा गया है, परन्तु यह 'विडम्बना' एक अर्थवत्ता को व्यंजित करती है—

ईसीलिये सत्य हमारे हैं सतही,
पहले से बनी हुई राहों पर घूमते हैं,
यंत्र बद्ध गति से।
पर उनका सहीपन
बहुत बड़ा व्यंग्य है............।[2]

सम्पूर्ण कविता की भावभूमि आज के चिंतन-प्रक्रिया का हृदयंगम करती हुई, 'सत्य' के प्रति एक विश्लेषणात्मक दृष्टि रखने में समर्थ है। वैज्ञानिक दृष्टि ने भी 'अदृश्य' के प्रति चिंतन किया है और सम्यक् रूप से, अदृश्य (Unobservables) प्रत्ययों को चार कोटियों में विभक्त किया है।

(१) वे अदृश्य तत्व जो यथार्थ से परे हों और इन्द्रियों के द्वारा देखे न जा सकें। जैसे चंद्रमा का दूसरा भाग।

(२) वे तत्व जो मानवीय शक्तियों से देखे न जा सकें। इसके अन्तर्गत विश्व से परे अस्तित्व की कल्पना, सृष्टि की गहनता आदि की धारणायें आती हैं।

१—नई कविता (३) कुँवर नारायण की कविता "प्रश्न का उत्तर" पृ० ३६
२—चाँद का मुँह टेढ़ा है मुक्तिबोध पृ० ८९

(३) वे तत्व जो भौतिक दृष्टि या रूप से देखे जा सकें, यदि प्रकृति सहयोग दे जैसे ..ति।

तथा

(४) वे तत्व जो तार्किक रूप से भी देखे न जा सकें, केवल उसी दशा मे उनकी अनुभूति की जा सके जब तर्क के नियमों का उलंघन किया जाय।

उपर्युक्त अदृश्य-प्रत्ययों में हर्बर्ट डिन्जिल ने [1] दूसरे तथा चौथे प्रत्ययो मे वैज्ञानिक चिंतन के उस स्वरूप की ओर संकेत किया है जो भौतिक दृष्टि से हट कर विश्वजनीन एवं तात्विक अवधारणाओं के प्रति प्रयत्नशील है। वैज्ञानिक अनुसंधानों ने एक ऐसे "स्वतंत्र आस्तित्व" की ओर संकेत किया है जो हमारे अनुभवों से परे है। यह तार्किक रूप से इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि हमारे अनुभव कितने सीमित हैं, हमारी इंद्रियां एक सीमित परिवेश तक ही कार्य कर सकती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में इन्द्रियों से परे प्राण की और प्राण से परे 'आत्मा' की कल्पना की गई है। यह 'आत्मा' इंद्रियातीत धारणा है जो अनुभूनि तथा प्रातिभज्ञान का विषय है जिसे अंग्रेजी में "इन्टयूशन" (Inuition) कहते हैं। सत्य या ईश्वर की धारणा (सौंदर्य, प्रेम कल्पना आदि भी) अनुभूति का विषय है क्योंकि इनकी धारणायें जीवन गत विकास के परिवेश में होती रहती हैं। एक "स्वतंत्र–अस्तित्व" की कल्पना ईश्वर की एक तार्किक कल्पना मानी जा सकती है यह कल्पना निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है।

"विकासवाद" प्रकरण के अन्तर्गत मैंने सापेक्ष सत्य की ओर सकेत किया था। विकासवादी दर्शन की यह मान्यता है कि ईश्वर की धारणा एक विकसित धारणा है और उसका सम्बंध निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है। किसी भी अस्तित्व की कल्पना सापेक्षता को चाहती है और जब यह अस्तित्व सापेक्षता की आधारभूमि पर पनपता एवं विकसित होता है, तब आस्तित्व भी अपने महत्त्व को चरितार्थ करता है। ईश्वर, परमात्मा, आत्मा—ये जितने भी शब्द हैं, उनका महत्त्व उसी समय स्वीकार किया जा सकता है जब वे किसी तत्त्व की सपेक्षता में अपने अस्तित्व को बनाए रखे। अतः ईश्वर की धारणा जगत–सापेक्ष है, उनके बीच में व्यवधान अथवा खाई नही है क्योंकि—

१—द एडवेंचर, पृ० २२१ २२२

ईश्वरीय जग भिन्न नहीं है,
इस गोचर जगती से।
इसी अपावन में अदृश्य वह,
पावन सना हुआ है।[१]

ईश्वर की यह सापेक्षिक धारणा, दर्शन की शब्दावली में द्वैत और अद्वैत का संधिस्थल है! ईश्वर का अस्तित्व उसके बिंब-निर्माण में है क्योंकि मनुष्य बिंबों एवं प्रतीकों के आधार पर अपने विश्वासों एवं आस्थाओं को अंतिम रूप देता है। लीकाम्टे डूनूँ ने एक स्थान पर कहा है 'हम ईश्वर का जो बिंब निर्मित करते हैं, वह 'उसके' अस्तित्व को प्रामाणित नहीं करता है, पर यह हमारा प्रयत्न है जो उसके बिम्ब-निर्माण में प्रयत्नशील रहता है।[२] इस कथन में बिंब-निर्माण स्वयं में एक विश्वास एवं आस्था का प्रश्न है और केवल विज्ञान में ही नहीं, पर धर्म, दर्शन, इतिहास, अर्थशास्त्र—सभी मानवीय क्रियाओं में हमे वह प्रक्रिया लक्षित होती है। मैं समझता हूँ कि द्वैत एव अद्वैत का समस्त विवाद, इस आस्था एवं बिंब निर्माण में समाप्त हो जाता है और यहीं पर आकर कोई भी आस्था आस्तिकता को जन्म देती है। यही कारण है कि वैज्ञानिक दार्शनिकों में आस्तिकवादी भी हैं और नास्तिकवादी भी हैं, पर मेरे विचार से आस्तिकता एवं नास्तिकता आस्था तथा विश्वास के स्वीकार ने अथवा नकारने का फल है। अध्यांतरिक दृष्टि से भी यह समस्त विभेद स्वय व्यक्ति की अपनी रचना है; उसकी चेतना का प्रतिरूप है—

द्वन्द्व रंच भर नहीं, कहीं भी प्रकृति और ईश्वर में
द्वन्द्वों का आभास द्वैतमय मानस की रचना है।[३]

इस प्रकार ईश्वर की धारणा, वैज्ञानिक-चिंतन की दृष्टि से आस्तिकता का प्रश्न है, पर यहां पर विभ्रम उस समय समक्ष आता है जब हम ईश्वर को केवल धर्म की ही धरोहर मानते हैं। ईश्वर केवल धर्म तक ही सीमित नहीं है क्योंकि वह हमारी समस्त मानवीय क्रियाओं का आधार है,

---

१—उर्वशी, दिनकर, पृ० ७७
२—ह्यूमन डेस्टिनी, लीकाम्टे डूनूँ पृ० ८९
३—उर्वशी दिनकर पृ० ८३

वह अंधविश्वास एवं अंधप्रेरणा का स्रोत नहीं है। वह एक तार्किक धारणा है, चाहे उसमें हमें अतार्किकता के दर्शन क्यों न हों ?

इससे प्रकट होता है कि रहस्य की सृष्टि एक सत्य है और ईश्वर को रहस्य की संज्ञा देकर उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखना भारी भूल ही नहीं होगी, पर नये खोजों एवं अनुसंधानों के प्रति अनास्था एवं पलायन की प्रवृत्ति लक्षित होती है। तथ्य तो यह है कि कुछ वर्ष पूर्व तक वैज्ञानिक क्षेत्र मे यह फैशन सा हो गया था कि अपने आपको नास्तिक कहा जाय। यह फैसन अब विज्ञान के चिंतन ने निर्मूल कर दिया है और भावी मनुष्य को आस्तिकता एवं आस्था के प्रति जागरूक होने का एक महत्वपूर्ण आयाम खोल दिया है।

आस्तिकता की भावना के प्रति आक्रोश की भावना का कारण अतीत की उन सड़ी गली मान्यताओं एवं अंधविश्वासों में निहित है जिसने आस्तिकता को धर्म के दायरे में बंद कर दिया। हिंदू धर्म में एक ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हुए भी, उसे साम्प्रदायों में अपनी अपनी मान्यतानुसार अवतारों के रूप में ग्रहण कर, आस्तिकता के प्रति कुठाराघात ही किया गया। यदि देखा जाय तो विभिन्न सम्प्रदायों एवं रूढियों के वात्याचक्र में फंस कर आस्तिकता की भावना विकृत ही होती गई। ईश्वर के नाम पर अनेक अत्याचार और कुचक्र रचे गये, और उसी के फलस्वरूप अस्तिकता के प्रति हमारी आस्था कम होती गई। इन्हीं धर्म के ठेकेदारों ने वैज्ञानिकों के प्रति (न्यूटन, गैलीलियो, डारविन आदि पर) नास्तिकता का आरोप लगाया जबकि इन वैज्ञानिकों ने "सत्य" का उद्घाटन ही किया था और अपनी आस्था को निर्भीक होकर रखा था।

मेरे विचार से, आस्तिकता की भावना ज्ञान के क्षेत्र में अवश्य सम्मान प्राप्त करती है बशर्ते वह अंधविश्वास, रूढ़िवाद से मुक्त हो सके। विज्ञान ने आस्तिकता को जिस माध्यम एवं स्वरूप की दृष्टि से समर्थित किया है, उसे उसी रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। विज्ञान ने ही हमे सही आस्तिक होने का अर्थ बताया है जो तर्क एवं अनुभूति का विषय है। उपनिषदों में जो ब्रह्म और ब्रह्मांड के एकत्व की बात कही गई है, उसका

सही अर्थ इसी दृष्टि से गृहीत किया जा सकता है। इस नयी आस्तिकता को नकारना आज के संदर्भ में सम्भव नहीं है। सर्जनात्मक क्षेत्र में इसी आस्था की आवश्यकता है और जब हम आज की सर्जना को देखते हैं तो इस आस्था के स्वर को दबा हुआ पाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सर्जन के लिये भी आस्तिक होना जरूरी है चाहे हम विसंगति का ही क्यों न सर्जन करें, केवल इस तथ्य के साथ कि हम उस विसंगति को अर्थवत्ता (सिग्नीफीकेंश) प्रदान कर सकें।

उपसंहार

पूर्व विवेचित समस्त अध्यायों के अन्तर्गत वैज्ञानिक चिंतन के उस स्वरूप पर विचार किया गया है जिसने मानवीय एवं ब्रह्मांडीय विचारणाओं में एक नव दृष्टि प्रदान की है अथवा मानवीय मूल्यों तथा उसकी संवेदना के स्तरों में नवीन आयामों को खोलने का प्रयत्न किया है। चाहे वह सृष्टि या विकासवाद का क्षेत्र हो, चाहे वह प्राकृतिक-घटनाओं का क्षेत्र हो, चाहे वह दर्शन और मूल्यों का क्षेत्र हो—सभी क्षेत्रों में वैज्ञानिक चिंतन का प्रभाव अथवा वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं की काव्यात्मक अभिव्यक्ति की एक नवीन दृष्टि कवियों और रचनाकारों में सम्यक् रूप से देखी जा सकती है। केवल एक बात इस संदर्भ में ध्यान योग्य है। रचनाकारों की दृष्टि, जहां तक चिंतन का प्रश्न है, उतनी विकसित एवं सारगर्भित नहीं प्राप्त होती है जितनी उनसे अपेक्षित है। इसका कारण कदाचित् यह है कि हमारा कवि अभी वैज्ञानिक चिंतन के आयामों के प्रति उतना सजग नहीं है जितना उसे होना चाहिए। जब हम अंग्रेजी अथवा किसी अन्य समृद्ध विदेशी साहित्य को लेते हैं, तब हम यह तथ्य पाते हैं कि वैज्ञानिक—विकास की परम्परा के अधिक निकट होने के कारण, वहां के साहित्य एवं काव्य पर विज्ञान की विचार-धारा का एक स्वस्थ स्वरूप प्राप्त होता है। इस तथ्य का विवेचन आइफर इवेन्स, व्हाइटहेड, मारजोरी निकाल्सन, इस्टब्रुक तथा लारेंस ड्यूरल आदि लेखकों एवं चिंतकों ने अपनी कृतियों में प्रस्तुत किया है। यह सत्य है कि इन लेखकों और आलोचकों के पास एक विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि थी जो उन्हें परम्परा से प्राप्त हुई थी। उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि वैज्ञानिक धारणाओं ने सर्जनात्मक कल्पना को एक नवीन आयाम ही नहीं दिया है, वरन् कवि और कलाकार को एक ऐसी बौद्धिक अनुभूति एवं अन्तर्दृष्टि प्रदान की है, जिसके द्वारा वह विश्व, मानव और प्रकृति के प्रति एक नव-दृष्टि को प्रश्रय दे सका है न्यूटन गैलीलियो, डिमोक्रिटस डारविन आइंस्टीन आदि वैज्ञानिकों

की खोजों ने कवि की कल्पना एवं सर्जना को आंदोलित किया है और इसी कारण शेली, वर्डसवर्थ, ब्लेक, इलियट आदि अनेक कवियों ने वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं को काव्यात्मक अनुभूति में ढाल कर, उसको सरस अभिव्यक्ति प्रदान की है।[1] यही नहीं, उन्होंने वैज्ञानिक चिंतन के आयाम से दार्शनिक एवं धार्मिक मूल्यों के बारे में अपने भावों को एक तार्किक रूप से रखने का प्रयत्न किया है। आधुनिक हिंदी काव्य के कवियों ने भी वैज्ञानिक चिंतन को न्यूनाधिक रूप से ग्रहण किया है, पर इतना सत्य है कि उनकी दृष्टि इस दिशा की अंग्रेजी कवियों की अपेक्षा, कम गतिशील रही है। इसका कारण उस महत्वपूर्ण वैचारिक प्रगति से हमारा साक्षात्कार उनके बाद ही सम्भव हो सका। इसका असल में, ऐतिहासिक कारण ही अधिक है जिसके जिम्मेदार न हम हैं और न कोई; यह तो इतिहास की एक ऐसी लीक है जो हमारी नियति है। इसी नियति पर समस्त सृष्टि चक्र घूमा करता है क्योंकि—

उसकी गति में ही
समाहित है सारे इतिहासों की
सारे नक्षत्रों की दैवी गति ![2]

अब प्रश्न है कि चिंतन के जिस रूप का विश्लेषण यहां पर उपस्थित किया गया है, उसका भविष्य क्या है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर विवाद भी हो सकता है, मतभेद की काफी गुंजायश भी है, पर इसके बावजूद, कम से कम, मेरी यह स्थापना या मान्यता है कि चिंतन का भविष्य कभी भी अनिष्टपरक नहीं होता है और साथ ही मानव विकास का एक आवश्यक तत्व होने के नाते, वह सदा विकासोन्मुख होता है। यही तथ्य वैज्ञानिक चिंतन के सन्दर्भ में भी पूर्ण सत्य है।

इसका एक दूसरा भी पहलू है। अधिकांश कवियों की भावभूमि इस मान्यता के प्रति उतनी आस्थावान नहीं है जितनी उनकी यह आस्था एवं

१—इस विषय पर एक सम्यक् विवेचन परिशिष्ट के अन्तर्गत किया गया है।

२—अंधायुग डा० धर्मवीर भारती पृ० ७४

विश्वास कि 'विज्ञान की प्रगति ने या तो गरल की सृष्टि की है[1] अथवा यन्त्र व अणु-शक्ति मानव के विनाश का कारण बनती जा रही है—

कितने अरबों का तखमीना
कितने खरबों की तैयारी,
रॉकेट, जेट, उड़न बम बोले
शांति हमारी, शांति हमारी
और भभक कर
महाशक्ति बोली यों अणु की
मृत्यु हो चुकी है भविष्य की।[2]

आधुनिक कविता का यह एक सामान्य स्वर है, परन्तु दूसरी ओर कुछ ऐसे भी कवि हैं जो वैज्ञानिक-प्रगति को मानवीय ऊर्ध्व चेतना का एक विकासशील चरण मानते जिनमें पंतजी का विशेष स्थान है। पंतजी की भविष्य कल्पना अवश्य आदर्श का एक अतिरंजित रूप है क्योंकि उन्होंने अरविंद के प्रभाव में आकर, मनस्-चेतना के स्तरों को ऐसे स्वर्णिम-प्रतीकों से सजाया तथा सवांरा है जो रोमांटिक मनोवृति के परिष्कृत रूप कहे जा सकते हैं।[3] कुछ भी हो, इतना तो स्वयंसाक्ष्य है कि मानव-अस्तित्व के लिए अथवा उसके भविष्य के लिए केवल 'विज्ञान' जिम्मेदार नहीं है। 'विज्ञान' एक महत्वपूर्ण मानवीय ज्ञान है और ज्ञान के रूप में, कोई भी ज्ञान मनुष्य का हितैषी ही होता है, यह तो स्वयं उन राज्यतंत्रों एवं शक्तियों की दूषित मनोवृत्ति है जो विज्ञान के 'मूल्य' और उसकी उपलब्धि को एक संकीर्ण परिवेश देते जा रहे हैं। इतिहास यह सिद्ध करता है कि 'धर्म' के साथ भी यही घटना घटित हो चुकी है, पर धर्म का 'शिवत्व' लोप नहीं हो सका और इसी तर्क के आधार पर 'विज्ञान शिवत्व' का भी लोप नहीं हो सकता।

वैज्ञानिक चिन्तन के उपर्युक्त स्वरूप की अपेक्षा उसका एक अन्य महत्वपूर्ण भावी रूप है जो समष्टि-प्रगति का सूचक माना जा सकता है।

१—विश्ववेदना, मैथिलीशरण गुप्त, पृ० २३

२—धूप के धान, गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ६७ 'मैनहैटन' कविता

३—दे० पन्तजी की रचना 'सौवर्ण' जिसमें वैज्ञानिक प्रगति को भावी मानव के नव उपादान के रूप में ग्रहण किया है पृ० २० २४

विज्ञान के तीन क्षेत्र महत्वपूर्ण हैं जिनका सीधा सम्बन्ध मानव से है। ये क्षेत्र हैं—मानसिक, पदार्थगत और जीवनगत क्षेत्र जिनका अन्योन्याश्रित संबंध मानव के भावी रूप का नियामक हो सकता है। मनोविज्ञान मानव के मानसिक एवं आत्मिक रहस्य को उद्घाटित करता है पदार्थ–विज्ञान विश्व तथा प्रकृति के रहस्य को आविष्कृत करता है जिसके आधार पर मानव अपने से परे रहस्यों को, अपनी सापेक्षता में अनुभव करता है; तथा जीव विज्ञान (या जैव और अजैव विज्ञान) मानव जीवन तथा शरीर रचना के विकासोन्मुख रूप को हृदयंगम करता है। मेरे विचार से विज्ञान के ये तीनों क्षेत्र एक साथ ऐसे अकाल्पनिक रहस्यों को उद्घाटित करेंगे जो भावी मानव और जैव जगत दोनों के प्रति हमारे ज्ञान की निरन्तर वृद्धि करते रहेंगे।

१

अंग्रेजी काव्य और विज्ञान

इस प्रकरण के अन्तर्गत मैं उन प्रवृत्तियों एवं विचारों का संकेत प्रस्तुत करूंगा, जिनका सम्बन्ध मूलत: 'विज्ञान' से रहा है, पर अंग्रेजी काव्य मे उन वैज्ञानिक विचारों तथा प्रस्थापनाओं का एक स्वस्थ स्वरूप प्राप्त होता है जिसके द्वारा हमारे सामने यह स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिक विचारों का काव्यात्मक भाव बोध में एक विशिष्ट स्थान हो सकता है। इस दृष्टि को सामने रखकर अंग्रेजी काव्य की भावभूमि में इन वैज्ञानिक विचारों का स्वरूप-विश्लेषण अपेक्षित है।

मध्यकालीन योरूप के अंतिम चरण में वैज्ञानिक अनुसंधानों तथा प्रस्थापनाओं का एक विशिष्ट प्रभाव वहाँ के साहित्य पर प्राप्त होता है। रोमांटिक आंदोलन और उसके बाद के कवियों पर वैज्ञानिक-कल्पना का प्रभाव इस सीमा तक पड़ा कि कहीं कहीं पर उनके भावबोध पर वैज्ञानिक-चिंतन का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने वैज्ञानिक-विचारों का विवेचन तक कर डाला। इसी के समकक्ष एक अन्य तत्व मानववादी अध्ययन (Humanism) का भी प्रारम्भ हो चुका था जिसके कारण साहित्य 'मानववाद' के अध्ययन में एक सहायक तत्व हो सका। इस प्रकार, अंग्रेजी साहित्य में वैज्ञानिक-चिंतन से उद्भूत भावबोध का एक विशिष्ट स्थान होता गया।

प्राचीन अर्थ की दृष्टि से, विज्ञान को परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया और उसे यथार्थ अनुभव से उद्भूत 'ज्ञान' का रूप माना गया। इसी अर्थ में मिल्टन ने इस शब्द का प्रयोग किया है जबकि वह कहता है—

ओ पवित्र और बुद्धि प्रदान करने वाले वृक्ष
तू ही विज्ञान की माता है।

(पैराडाइज लास्ट—९)

इस कथन में विज्ञान के प्रति एक आस्था है जो कवि के अन्तर्मन को आलोडित करता है। वैसे कवि ब्लेक ने कहीं कहीं पर विज्ञान को सर्जना-

त्मक कला का शत्रु माना है[1], परन्तु उसके इस दृष्टिकोण का कोई विशिष्ट महत्त्व रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में नहीं हुआ ! मैं इस मत को इस पुस्तक के सभी अध्यायों में खंडित कर चुका हूँ और मैं इस सत्य को मानने से इन्कार भी नहीं कर सकता हूँ कि कोई भी मानवीय ज्ञान, निरपेक्ष स्थिति में गति-शील नहीं हो सकता है। आधुनिक भावबोध की पृष्ठभूमि में यह तथ्य अत्यन्त आवश्यक है। कम से कम, अंग्रेजी साहित्य और वह भी काव्य के क्षेत्र में, यह तथ्य सर्वथा मान्य माना जा सकता है।

इस स्थिति के विपरीत जॉन डोन (Donne) एक ऐसा कवि है जो प्रथम बार विज्ञान की नई मान्यताओं के प्रति आकृष्ट हुआ और वह भी, विशेषकर नक्षत्र-विद्या के आविष्कारों से। डोन की आस्था का रूप एक तर्क पर आश्रित था और उसकी आस्था थी कि 'नव-दर्शन' प्रत्येक मान्यता को शंका की दृष्टि से देखता है और धरती की आत्मा पूर्ण ज्ञान का अन्तर्लय नहीं कर सकती है।[2] इस कथन में, जहां एक ओर विज्ञान की प्रगति के प्रति एक प्रश्न चिन्ह भी है, वहीं मानवीय ज्ञान तथा क्रिया के प्रति एक हुई छिपी आस्था भी है।

इस आस्था का रूप हमें नक्षत्र-विद्या द्वारा उद्घाटित रहस्यों के प्रति एक जिज्ञासा के रूप में प्राप्त होता है। कवि की कल्पना इन रहस्यों के प्रति सचेत है और वह; वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रति एक आस्था भी रखता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक पैस्काल के अनुसार यह समस्त दृश्य जगत, प्रकृति के क्रोड़ में एक अंशमात्र है जिसके प्रति मानवीय चेतना सदैव गतिशील रहती है। कवि के शब्दों में—

> वे अमाप्य विस्तृत "गहनता" को देखते है
> जो समुद्र के समान भयंकर,
> गहन और व्यर्थ है।

1—लिट्रेचर एण्ड साइन्स, आइफर इवान्स, पृ० १३

2—'And new philosophy calls all in doubt
The sun is lost and the earth and so, man's wit.
Can well direct him.
Where to look for it.' (John Donne)

गैलीलियो तथा न्यूटन के आविष्कारों ने अनेक कवियों को केवल प्रभावित ही नहीं किया, बल्कि उन कवियों की संवेदना को काव्यात्मक अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख किया। सबसे महत्त्व की बात यह है कि सर थामस ब्राउन, केप्लर की भांति 'रहस्यात्मक गणित' का प्रेमी था और उसकी विचारधारा एक ऐसे वैज्ञानिक स्तर के निकट प्राप्त होती है जो अपने मे एक विशिष्ट देय है।[1] गैलीलियो ने 'नये तारों' की खोज की, और आकाश गंगा के प्रति जानकारी को बढ़ाया। यही नहीं उसने चन्द्रमा के धरातल के प्रति ज्ञान दिया। इन सब नवीन तथ्यों ने कवि की कल्पना को आंदोलित किया। बटलर, पोप, डोन, मिल्टन आदि कवियों ने इस नव-कल्पना को अपने काव्यों में यथास्थान दिया। बटलर ने 'नये तारे' की खोज पर एक आश्चर्यजनक व्यंग्य किया है जो, कम से कम, उस समय की भावभूमि को अवश्य स्पष्ट करता है—

एक कॉमेट और वह भी बिना दाढ़ी के,
या एक तारा जो पहले कभी भी नहीं दिखलाई दिया।

सत्तरहवीं शताब्दी में अंग्रेजी काव्य की भावभूमि में जान डोन और मिल्टन की काव्य-चेतनाएं नक्षत्र-विद्या के प्रति एक आस्था एवं विश्वास की भावनाएं रखती है। इन कवियों ने नक्षत्र-विद्या (Astronomy) द्वारा उद्घाटित रहस्यों के प्रति एक जिज्ञासा ही नहीं रखी है, पर उसके प्रति एक सर्जनात्मक दायित्व को निभाया है। यहाँ पर 'सर्जन' एवं 'नव-ज्ञान' का एक सीधा सम्बन्ध प्राप्त होता है जो एक नव-भावबोध की सूचना देता है। जान डोन ने एक स्थान पर कहा है कि—

"इन नक्षत्र-समूहों में नये तारे
उत्पन्न होते हैं
और पुराने हमारी दृष्टि से
ओझल हो जाते हैं।"

मिल्टन का 'पैराडाइज लास्ट' एक आलोचक के अनुसार, एक ब्रह्मांडीय काव्य है जिसमें अन्तर्नक्षत्रीय 'दिक्' में एक नाटक का सुन्दर अभिनय किया गया है। इस दिक् में पृथ्वी और चन्द्रमा का आपसी सम्बन्ध

1—साइन्स एंड इमेजिनेशन, मारजोरी निकाल्सन, पृ० ६

दर्शाया गया है जबकि पृथ्वी एक बड़े "नक्षत्र' के रूप में और चन्द्रमा को उसके समीप छोटे आकार के रूप में चित्रित किया गया है—

'This pendent World
in bigness as a star,
Of smallest magnitude
close by the Moon.'[1]

(Paradise Lost)

अत: यहाँ पर पृथ्वी, अन्य ग्रहों के समान एक ग्रह है। इस तथ्य का आविष्कार गैलीलियो ने किया था और मिल्टन ने उस 'सत्य' का उपयोग अपने महाकाव्य में किया। इसी आधार पर मिल्टन के काव्य के बारे में, प्रोफेसर डेविड मैसन ने कहीं पर कहा है कि "मिल्टन 'दिक्' के विश्व में विचरण करता था, जबकि शेक्सपियर 'काल' के विश्व में निवास करता था।"

अंग्रेजी काव्य में शेली की अनेक कविताएं वैज्ञानिक विचारों से प्रभावित प्राप्त होती है। प्रोफेसर ह्वाइटहेड का मत है कि शेली एक ऐसा कवि है जो वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं से सबसे अधिक प्रभावित है। काव्यात्मक कल्पना एवं संवेदना का एक सुन्दर विकास या रूप शेली में देखा जा सकता है जहां तक वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं विचारों का प्रश्न है। उसकी कविता "बादल" एक फैन्टेसी के रूप में समक्ष आती हैं, पर वह फैन्टेसी वैज्ञानिक विचार पर अवलंबित है। कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं जिसमें मेघ का स्वकथन है—

मैं पृथ्वी और जल की पुत्री हूँ,
मैं समुद्र और तट के छिद्रों से
गुजरती हूँ,
मैं परिवर्तित हो सकती हूँ,
पर नाश नहीं।

इसी प्रकार, वाष्पीकरण की प्रवृत्ति विस्तारवादी है जो शेली के द्वारा इस प्रकार व्यक्त हुई है—

1—उद्धत "साइन्स एंड इमाजिनेशन" से, पृ० ६५

'वाष्पीय आह्लाद
जो सीमित नहीं किया जा सकता।"

इस संदर्भ में आइफर इवान्स का मत है कि शेली की प्रकृति का समस्त आधार अंगीय (Organic) प्रवृत्ति का सूचक है और यहां पर अध्यांतरिक दृष्टि, जो आधुनिक विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण धारणा है, उसका भी संकेत हमें शेली की रचनाओं में प्राप्त होता है। इस मत का पूरा आख्यान 'वैज्ञानिक-दर्शन' नामक अध्याय में किया जा चुका है। शेली की एक कविता 'मांट ब्लैंक' (Mont Blanck) की कुछ पंक्तियां अध्यांतरिक (Subjective) दृष्टिकोण का परिचय देती हैं—

पदार्थों का अनंत विश्व
जो 'मन' से प्रवाहित होता है
और अपनी द्रुतगामी धाराओं
में परिक्रमा करता है।[1]

पदार्थ (Matter) की भावना, वैज्ञानिक चिंतन के क्षेत्र में एक रहस्यपूर्ण धारणा है और पदार्थ को ही वह पृष्ठभूमि तत्त्व माना गया है जिससे समस्त सृष्टि का उद्भव तथा विकास हुआ है। पिछले प्रकरणों में 'पदार्थ' की इस रहस्यमयता की ओर संकेत किया जा चुका है और जिससे यह स्पष्ट होता है कि पदार्थ की धारणा कोई भौतिक धारणा मात्र नहीं है, वह सत्य में एक तात्त्विक धारणा सी होती जा रही है। पदार्थ की इस रहस्यमयता के साथ परमाणु की सृजनात्मकता का रूप समक्ष आता है। परमाणु और पदार्थ ही समस्त वस्तुओं का आदि स्रोत है। लूक्रीशियस (Lucretius) की एक कविता एटामिक थियेरी (Atomic Theory) में इसी वैज्ञानिक सिद्धांत को काव्यात्मक रूप दिया गया है—

पदार्थ, वस्तुओं का सृजनात्मक तत्त्व है
या वस्तुओं का बीजरूप है;
कुछ के अनुसार—ये आरम्भिक तत्त्व है

1—The everlasting Universe of things,
Flows through the Mind,
And rolls its rapid waves.

क्योंकि उनसे प्रारम्भिक सिद्धांत की तरह
उन सभी वस्तुओं का उद्भव होता है
जो वर्तमान है।[1]

(Matter, Creating stuff of things,
Or seeds of things
Or primal bodies, Some might say,
Because from these as Elementary principles,
Emerge all things that are)

पदार्थ के विभिन्न रूप समस्त सृष्टि तथा 'दिक्' में गतिशील प्राप्त होते हैं। नक्षत्र, ग्रह, नीहारिकायें—सर्वत्र दिक् के विशाल अन्तर्गृह में विद्यमान हैं। दिक् और काल की धारणायें सापेक्षिक हैं जिसका पूर्ण विवेचन 'विकासवाद' अध्याय के अन्तर्गत किया जा चुका है। विदेशी कवियों ने भी दिक् और काल की समस्याओं तथा उनके रहस्यों के प्रति, वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के प्रकाश में, अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति दी है। चार्ल्स मैके (Mackay) की कविता 'एस्ट्रानमर' में दिक् और काल की समस्या के प्रति एक जिज्ञासा प्रकट होती है जो नक्षत्र-वेधशाला से उद्भूत जिज्ञासा है—

अनन्त दिक् और काल
तुम्हारी समस्यायें हैं
ए तपस्वी ! जिसका मानसिक आयाम
इस प्रकार 'आकाश' को हृदयगम करता है
उस मनुष्य की आत्मा कितनी महान है
जो इतनी ऊँचाई की यात्रा करती है।[2]

मनुष्य के दिक् अभियान का एक सुन्दर चित्र इन पंक्तियों में साकार होता है और निश्चय रूप से, कवि का अन्तर्मन वैज्ञानिक-रहस्यों एव धारणाओं के प्रति सचेत है। दिक् में 'आकाश गंगा' को कवि ने श्वेत दुग्ध-धूल की संज्ञा दी है और उसके हरेक 'कण' को सूर्य कहा गया है जो अपने

1—ए बुक आफ साइन्स वर्स, पृ० १
2—ए बुक आफ साइन्स वर्स पृ० १४७

सौर-मंडल का स्वामी है।[1] उपर्युक्त भाव एल्फ्रेड नोयस के हैं और उसकी इस अभिव्यक्ति मे एक जागरूक वैज्ञानिक भावबोध के दर्शन होते हैं।

दिक् के समान काल का भी महत्त्व वैज्ञानिक-चिंतन में मान्य हुआ है। काल की धारणा एक अव्यक्त धारणा है जिस प्रकार दिक् की भावना। परन्तु ये धारणायें इतनी आवश्यक हैं कि आज का समस्त वैज्ञानिक-दर्शन, इन दो धारणाओं की धुरी पर नाच रहा है। आइंस्टीन का सापेक्षवादी सिद्धांत, जिसके बारे में प्रथम ही संकेत किया जा चुका है, एक क्रांतिकारी दृष्टि है जिसमें आधुनिक चिंतन को नई दिशाओं की ओर गतिशील किया है। आज का विज्ञान इस ओर भी संकेत करता हुआ प्रतीत होता है कि काल (Time) हमारे अन्दर ही घटित हो रहा है, वह सापेक्षिक एवं अभ्यांतरिक अवधारणा है। काल हमारी मृत्यु-चेतना का मापक है और यदि काल को तत्वतः विस्तारित कर दिया जाए तो हम सरलता से, मृत्यु को वर्तमान और भविष्य में अनुभवगम्य बना सकते हैं। टी०एस० इलियट की निम्न पंक्तियाँ, जो समय या दिक् की विराटता को समक्ष रखती हैं, असल में, वैज्ञानिक सत्य को उद्घाटित करती है—

वर्तमान काल और भूतकाल, कदाचित दोनों उपस्थित हैं भविष्य काल में, और भूतकाल में समाहित है भविष्य काल, यदि समस्त काल नित्य

1—ए बुक आफ साइन्स वर्स, पृ० १९७

"And all these glimmerings,
Where the abyss of Space,
Is powdered with a milk dust,
Each grain,
A burning sun, and Every Sun a Lord."

वर्त्तमान है, तो समस्त काल अविमोच्य है ।[1]

यहाँ पर 'अनंतता' की धारणा एक सत्य का दिग्दर्शन करती जो दिक् और काल की नित्यता एवं विराटता के प्रति एक महत्त्वपूर्ण धारणा है। कदाचित् इसी से, लारेंस ड्यूरल (Lawrence Durrell) का यह कथन है— "आधुनिक वैज्ञानिक–तथ्य हमें, क्रमशः प्राचीन पौर्वात्य रहस्यवाद की ओर उन्मुख करते जा रहे हैं ।[2]

1—Time present and Time past,
Are both perhaps present in Time–future,
And Time future contained in Time Past
If all Time is eternally present
All Time is unredeemable."

(T. S. Eliot)

2—की टू मार्डर्न प्योटरी, लारेंस ड्यूरल, पृ० २२

नामानुक्रमणिका

संदर्भ पुस्तक-सूची

काव्यग्रन्थ

(१) अरी, ओ करुणा प्रभामयी—अज्ञेय

(२) अभी, बिल्कुल अभी केदारनाथ सिंह

(३) आंगन के पार द्वार—अज्ञेय

(४) अंधायुग—धर्मवीर भारती

(५) अग्निशस्य—नरेंद्र शर्मा

(६) ओ, अप्रस्तुत मन—भारत भूषण अग्रवाल

(७) इत्यलम्—अज्ञेय

(८) उत्तरा—सुमित्रानंदन पंत

(९) उर्वशी—रामधारीसिंह दिनकर

(१०) एकलव्य—रामकुमार वर्मा

(११) कनुप्रिया—धर्मवीर भारती

(१२) कामायनी—जयशंकर प्रसाद

(१३) गुंजन—सुमित्रानंदन पंत

(१४) चक्रव्यूह—कुँवर नारायण

(१५) चाँद का मुँह टेढ़ा है—गजानन माधव मुक्तिबोध

(१६) तार सप्तक, प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय सं० अज्ञेय

(१७) तुलसीदास—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

(१८) धूप के धान—गिरिजा कुमार माथुर

(१९) नई कविता (अंक २, ३, ४ और ५-६) सं० डा० जगदीश गुप्त

(२०) नई पीढ़ी, नई राहें—रामकुमार चतुर्वेदी

(२१) नकुल—सियाराम शरण गुप्त

(२२) नाँव के पाँव—डा० जगदीश गुप्त

(23) परिमल—सूर्य कांत त्रिपाठी निराला
(24) प्रतीक (12)
(25) बोलने दो चीड़ को—नरेश मेहता
(26) युगांत—सुमित्रानंदन पंत
(27) युगवाणी—सुमित्रानदन पंत
(28) वेणुले गूंजे धरा—माखनलाल चतुर्वेदी
(29) शिला पंख चमकीले—गिरिजा कुमार माथुर
(30) सपन की गली—हरीश भादनी
(31) सूर्य का स्वागत—दुष्यंत कुमार
(32) सात गीत वर्ष—धर्मवीर भारती
(33) सौवर्ण—सुमित्रानंदन पंत

अंग्रेजी संदर्भ ग्रंथ

(1) A Book of Science Verse Edited by W. Eastwood, Macmillan and Co., London (1961)
(2) Essey in Science by Albert Eeinstein. Philosophical Library, New York, 1935.
(3) Hindu Psychology by Swami Akhilanand.
(4) Highlights of Modern Literature Edited by Stephen Spender
(5) Hindu Manners, Customs and Ceremonies by ABBE. J. A. Dubios, Clarendon Press, Oxford (1906)
(6) Human Destiny by Leconite Due Nuy. Signet Book, New American Library, 1949.
(7) Logic and knowledge by Bertrand Russel.
(8) Man in the Modern World by Julian Huxley, Chatto and Widus, London. (1947)
(9) Philosophical Aspects of Modern Science by C. E. M. Joad. George Allen. and Unwin, London (1948)
(10) Science and Imagination by Marjorie Nicholson. Great Seal Books New York (1956)

(11) Science and the Unseen World by Arthur Eddington. George Allen & Unwin, London. (1949)
(12) Science and the Modern World by A. N. Whitehead, American Library, Mentor Book (1925)
(13) Science and Literature by I far Evans, George Allen and Unwin, London, (1955)
(14) Science and Literature by Adlous Huxley. Chatto and Windus, London. (1963)
(15) Science and Culture by Sri Aurbindo, Sri Aurbindo Ashram, Pondicherry (1951)
(16) Truth and Symbol by Karl Jespers, Vision Press, London (1959)
(17) The Philosophy of Physical Science by Arthur Eddington. University Press, Cambridge (1939):
(18) The Limitations of Science by J. W. N. Sullivan, New American Library, 1950.
(19) The Scientific Adventure by Herbert Dingle, Pitman & Sons, London, (1952)
(20) The Unity and Diversity of Life by J.B.S.Haldane. The Publishing Division, Govt. of India, Delhi (1958)
(21) The Life Divine Part II by Sri Aurbindo, Arya Publishing House, Calcutta (1944)
(22) The Nature of Universe by Fred Hyle. Basil Blackwell, Oxford, (1960)

पारिभाषिक शब्द सूची (अंग्रेजी-हिन्दी)

Analysis	विश्लेषण
Astronomy	नक्षत्र-विद्या
Absurdity	विसंगति
Background Material	पृष्ठभूमि पदार्थ
Balance.	तुल्यभारिता
Communication	संप्रेषण
Calculus	कलन
Creation	सृष्टि-रचना
Cell	कोष
Co-existence	सह-अस्तित्व
Conscious Matter	चेतन पदार्थ
Circumference	परिधि
Chronic	संक्रामक
Electro Magnetic Theory	विद्युतचुम्बकीय सिद्धांत
Evolution	विकासवाद
Expanding Universe	विस्तारित होता विश्व
Equation	समीकरण
Epistemological Hypothesis	अभिज्ञानपरक उपपत्तियां
Energy	ऊर्जा
Four Dimension	चतुर-आयाम
Fission	विघटन
Form	रूप
Gravity	गुरुत्वाकर्षण
Geometry	ज्यामीति
Galaxy	नीहारिका
Harmony	समरसता
Heredity	पैतृक-संस्कार

Idioms	वाक्शैली
Improbability	अनिश्चितता
Intuition	प्रातिभज्ञान, अनुभूति
Mammals	स्तनधारी
Mirage	मृगमरीचिका
Metaphysical	तात्त्विक, आधिभौतिक
Method	पद्धति, विधि
Motion	गति
Microcasm	पिंड
Macrocasm	ब्रह्मांड
Nucleus	केंद्रक
Natural Selection	प्राकृतिक निर्वाचन
Organic	जैव
Phenomenon	प्राकृतिक-घटनाएं
Pre-established Harmony	पूर्व-स्थापित सामरस्य
Subjective	अभ्यांतरिक, विषयीगत
Species	प्रजातियाँ
Struggle for Existence	अस्तित्व-संघर्ष
Space	दिक्
Significance	अर्थवत्ता
Treory of Relativity	सापेक्षवादी सिद्धांत
Transformation	रूपांतर
Trinity	त्रिमूर्ति
Time	काल
Triangle	त्रिभुज
Unobsevrable	अदृश्य प्रत्यय
Velocity	वेग
Vibration	कंपन
Veracity	उल्लास